सत्यापन क्रमांक : RAJHIN/2015/60530

ओ३म्

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

हिन्दी मासिक

वर्ष : 1 अंक : 6 1 जून 2015 जोधपुर (राज.) पृ.:36 मूल्य 150 ₹ वार्षिक

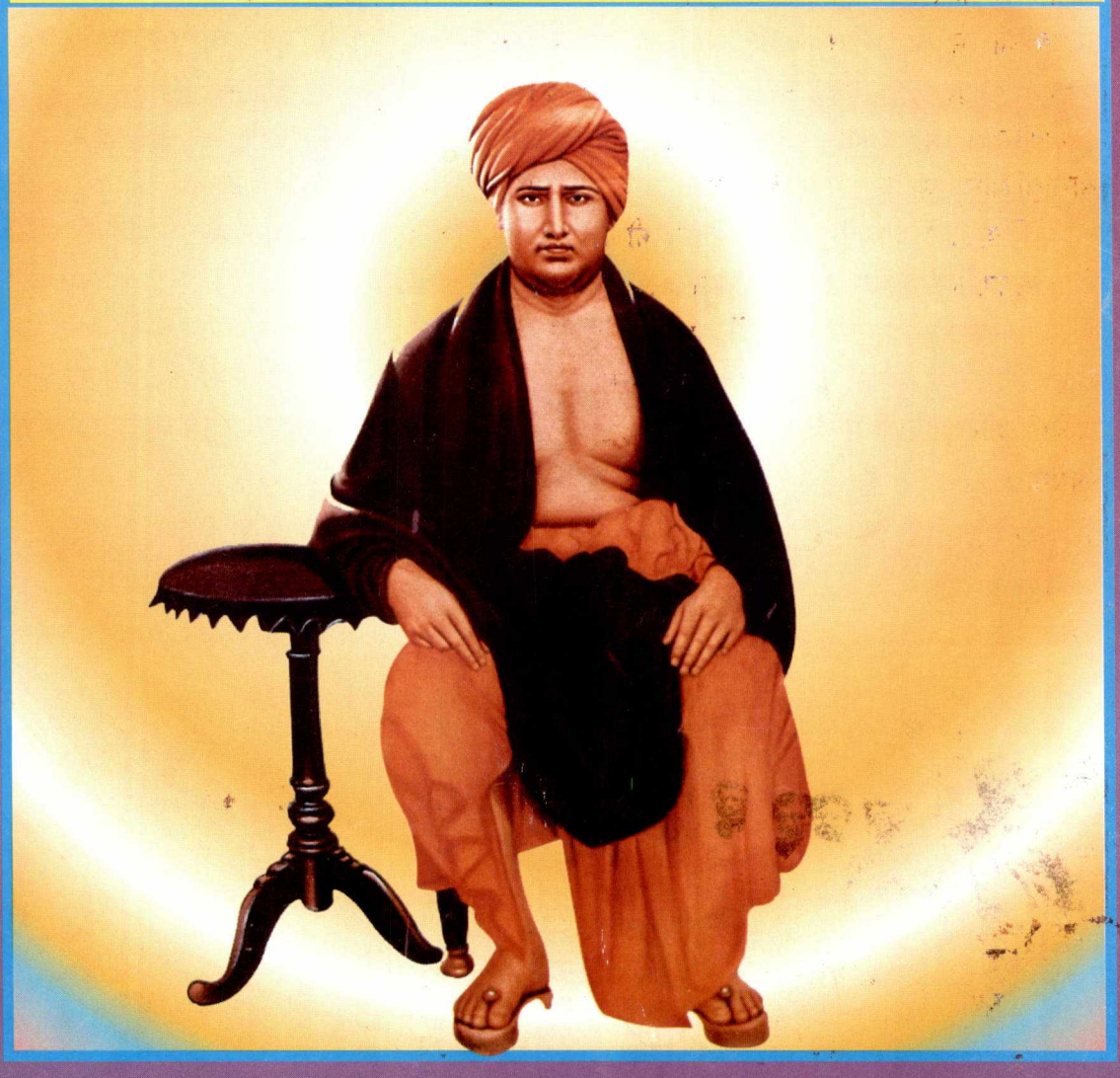

ब्रह्मर्षि गुरु विरजानन्द आर्ष गुरुकुल मण्डोर

सूचना जोधपुर (राजस्थान) सूचना

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास जोधपुर द्वारा संचालित ब्रह्मर्षि गुरु विरजानन्द आर्ष गुरुकुल मण्डोर में अध्ययन हेतु छात्रों तथा अभिभावकों को शुभ समाचार देते हुए हम प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं । यह न्यास एक ऐसे गुरुकुल के संचालन हेतु कृत संकल्प है जहाँ से पढ़कर स्नातक होने वाला प्रत्येक छात्र वैदिक संस्कृति, सभ्यता व विचारधारा से ओतप्रोत हो । ऐसे इस गुरुकुल में अध्ययन करने वाले प्रत्येक छात्र को सभी आवश्यक सुविधा सामग्री निःशुल्क प्राप्त होगी, तथा आवास भोजन के नाम पर भी शुल्क नहीं लिया जायेगा । गुरुकुल का उद्देश्य संस्कृत और संस्कृति की रक्षा के साथ ही वैदिक वाङ्मय का प्रचार-प्रसार करना है । अतः हम चाहते हैं कि गुरुकुल का प्रत्येक स्नातक वेद और वैदिक संस्कृति की संरक्षा और सुरक्षा के लिए समर्पित भाव से कार्य करने वाला बने ।

प्रवेश हेतु न्यूनतम् योग्यता आठवी पास तथा न्यूनतम आयु 12 (बारह वर्ष) की रखी गई है। 12 बारहवीं पास तथा 18 वर्ष की आयु तक के छात्र प्रवेश हेतु आवेदन कर सकते हैं इससे बड़ी आयु वालों को प्रवेश नहीं दिया जायेगा । अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया व पाठ्यक्रम आर्ष पाठविधि के अनुसार ही होगा, साथ ही संगणक (कम्प्यूटर) का ज्ञान अनिवार्य रूप से कराया जायेगा।

न्यास ट्रस्टी गुरुकुल के संचालकों का मानना है कि 10-12 वर्ष पूर्ण मनोयोग से अध्ययन कर स्नातक बनने पर युवकों को आजीविका दिलाना हमारा दायित्त्व है । प्रवेश प्रक्रिया मई 2015 से प्रारंभ हो जायेगी और आषाढ़ी पूर्णिमा (गुरुपूर्णिमा) सम्वत् 2072 से गुरुकुलीय अध्ययन विधिवत् आरंभ हो जायेगा ।

सम्पर्क सूत्रः

विजयसिंह भाटी	आर्य किशनलाल गहलोत	पं. रामनारायण शास्त्री
प्रधान	मंत्री	(ट्रस्टी)
	9829027481	9413610928

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । -ऋग्वेद ९।६३।५

सबको श्रेष्ठ बनाओ

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश का मुख्य प्रयोजन

महर्षि दयानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व, कृतित्व, व उनके द्वारा समस्त लिखित साहित्य तथा उनके सार्वभौमिक अद्वितीय कार्यों का प्रचार-प्रसार व व्यवहार में साकार करने के लिये कार्य करना

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर का मुखपत्र

वर्ष : 1 अंक : ६

ज्येष्ठ संवत् २०७२

जून २०१५

सृष्टि संवत् १९६०८५३११६

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

पायें, पढ़ें, पचायें

सम्पादक मण्डल :

पं. सत्यानन्दजी वेदवागीश, नोएडा

प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर

डॉ. धर्मवीर, अजमेर

डॉ. सुरेन्द्रकुमार, हरिद्वार

डॉ. वेदपालजी, मेरठ

पं. रामनारायण शास्त्री

आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा

विशेष : महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं । उनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है ।

सम्पादक :

रामनिवास 'गुण ग्राहक'

7597894991

mail i.d.: info@dayanandsmritinyas.org.

www.dayanadsmritinyas.org.

प्रकाशक :

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर

वार्षिक शुल्क :150 रुपये

आजीवन शुल्क : 1100 रुपये (15 वर्ष)

	क्या	कहाँ
1	ईश्वर स्तुति-प्रार्थना	4
2	सम्पादकीय	5
3	ऋग्वादेदि भाष्य भूमिका	8
4	ईश्वर चिन्तन	12
5	आचार्य उदयवीरजी.....	13
6	एक विलक्षण क्रातिकारी...	16
7	आर्यसमाज का प्रचार कार्य....	19
8	महर्षि यास्क की दृष्टि में.....	22
9	विश्व की अस्मिता की संवाहक.....	25
10	शास्त्र.....	27
11	भारत के जगद्गुरु होने का.....	30
12	आयुर्वेद चिकित्सा	32
13	सूचना : सार्वदेशिक आर्य वीरांगना....	33
14	न्यास में महाशय धर्मपालजी	34
15	न्यास द्वारा प्रचार-प्रसार कार्य	34

SBBJ बैंक की खाता संख्या 51013406510

प्रार्थना

पावका नः सरस्वती वयाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ।।७।। ऋ० १।१।६।४।।

[**शब्दार्थ**-हे वाणी के स्वामिन्! (नः) हमें (पावका) पवित्र करने वाली, स्वयं पवित्र (सरस्वती) सर्वशास्त्रविज्ञानयुक्त वाणी (वाजेभिः) ज्ञान, अन्न आदि से (वाजिनीवती) सर्वोत्तमज्ञानक्रियायुक्त होती हुई (धिया) बुद्धि द्वारा (वसुः) धनस्वरूप होकर (यज्ञम्) पूजनीयतम आप के ज्ञान की (वष्टु) कामना करे।।]

व्याख्यान

हे वाक्पते! सर्वविद्यामय! हम को आप की कृपा से "**सरस्वती**" सर्वशास्त्रविज्ञानयुक्त वाणी प्राप्त हो। "**वाजेभि**" तथा उत्कृष्ट अन्नादि के साथ वर्त्तमान "**वाजिनीवती**" सर्वोत्तमक्रियायुक्त "**पावका**" पवित्रस्वरूप और पवित्र करने वाली सदैव सत्यभाषणमय, मङ्गलकारक वाणी आपकी प्रेरणा से प्राप्त होके आपके अनुग्रह से "**धियावसुः**" परमोत्तम बुद्धि के साथ वर्तमान निधिस्वरूप यह वाणी "**यज्ञं वष्टु**" सर्वशास्त्रबोध और पूजनीयतम आप के विज्ञान की कामनायुक्त सदैव हो, जिस से हमारी सब मूर्खता नष्ट हो और हम महापाण्डित्ययुक्त हों।।८।।

विशेष- हे वाणी के अधिपति, सर्वज्ञ प्रभो! हमें आपकी कृपा, करुणा और वात्सल्य के सहारे ऐसी वाणी प्राप्त हो, जो सर्वशास्त्रों के रहस्यों को खोलने में, और सब विज्ञानों को प्रकाशित करने में पूर्ण सक्षम एवं कुशल हो। प्रभो! आपने अपनी सर्वज्ञता का पूरा-पूरा लाभ हम मानवों के कल्याणार्थ हमें प्रदान किया है। हम आपके अमृत पुत्र भी उन अभागे मानवों को आपसे प्राप्त ज्ञान को ही आपसे प्राप्त विद्या विलासिनी वाणी के माध्यम से देकर उनका कल्याण करना चाहते हैं। प्रभो! हमें जीवन-यापन के लिए ऐसा उत्कृष्ट पवित्र अन्न प्रदान करो, ? जिस सात्त्विक अन्न के सेवन से हमारी वाणी केवल उपदेश करने वाली ही न हो, बल्कि जो विज्ञान हम दूसरों को दें, वह हमारे अपने आचरण में भी साकार दिखे। प्रभो! मैं जानता हूँ कि निर्मल ज्ञान ही वह अन्न है, जिससे वाणी सर्वोत्तम क्रिया और विज्ञान से युक्त होकर स्वयं पवित्र हो जाती है और उस वाणी द्वारा किये गये सत्य भाषण से सबका मंगल होता है और जीवन-पवित्र बन जाता है। आपकी पावन-प्रबल प्रेरणा व आपके अमल अनुग्रह से परमोत्तम बुद्धि के साथ संयुक्त होकर अमूल्य निधि बन चुकी मेरी यह वाणी सर्वशास्त्रों के बोध को प्रदान करने वाली हो। हे पूजनीयतम् प्रभो! सर्वोत्तम बुद्धि एवं सर्वशास्त्रबोध से युक्त होकर भी मेरी यह वाणी सदैव आपकी कामना युक्त होकर नित्य आपके गुणानुवाद करती रहे। आपकी भक्ति भावना से युक्त होकर आपको पुकारती रहे ताकि निरन्तर आपके ज्ञान पाने और बाँटने वाले होकर हम अज्ञानता व मूर्खता आदि दोषों से मुक्त पूर्ण पण्डित्य को प्राप्त करें! प्रभो हमारी यही प्रार्थना है, कृपा करके इसे पूर्ण करो। इसे पूर्ण करो!!

सम्पादकीय

कोई है ? जो आगे आये !

आर्यसमाज की वर्तमान स्थिति को लेकर विचार करने वाला कोई भी विवेकशील व्यक्ति खुली आँखों से हमारे कार्य-व्यवहार को देखकर, निष्पक्ष और निर्मम निष्कर्ष निकालने लगे तो उसे सुनकर आर्य नेता कहे जाने वालों की आँखें लाल होने लगेंगी तथा आर्यसमाज के प्रति सच्ची निष्ठा रखने वाले सिद्धान्तनिष्ठ सज्जनों की आँखें में आँसू आये बिना न रह सकेंगे। नेताओं के बड़े-बड़े दावे और सिद्धान्त जीवी आर्यों का दर्द दोनों मिलकर आर्यसमाज की जो तस्वीर दिखाते हैं, उसे दृष्टिकोण का अन्तर बताकर नहीं छोड़ा जा सकता। हृदय को कठोर करके लिखना पड़ रहा है कि अपनी-अपनी चौखट चमकाने के लिए नेता नामधारी मुट्ठीभर लोगों ने ऋषि के सम्पूर्ण जीवन की महान् उपलब्धियों को चौपट कर दिया। कड़वी औषधि लिये बिना रोग का उपचार करने की बातें एक छलावे से अधिक कुछ नहीं। लाख टके की बात यह है कि नेताओं की बात जाने भी दें तो भी हमारे सिद्धान्त निष्ठ विद्वान् वा कर्मठ कार्य कर्त्ता भी किसी प्रकार की कड़वी औषधि स्वयं लेने और दूसरों को देने के पक्ष में नहीं दिखते। किसी भी प्रकार के **पथ भ्रष्ट लोगों का बहिष्कार या उपेक्षा करने का साहस आर्य समाजियों ने खो दिया है।** चार पैसे के लालच में सिद्धान्त निष्ठा का ढ़ोल पीटने वाले विद्वान् समलैंगिकता के समर्थक और भारतीय सेना के विरोध में धरना देने वाले (देश द्रोही) व्यक्ति की जड़ों को सींचने, उसके साथ मंच साझा करने और हार ड़ालने ड़लवाने पहुँच जाते हैं। ऐसी पथ भ्रष्टता को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रोत्साहन देने वाले स्वयं को आर्यसमाज का हितैषी घोषित करें, तो लगता है कि अपने बौद्धिक दिवालियेपन को प्रकट और प्रमाणित करने का यह सभ्य और शिष्ट संस्करण बन गया हो ! लोग मधुमक्खी से ड़रते हैं कि इसका ड़ंक विषैला होता है, यह डंक मार दे तो बड़ा दर्द होता है। सामान्य मक्खी को लेकर हमारे मन में कोई बड़ा भय नहीं रहता। समझदार जानते हैं कि गन्दगी के ढ़ेर, शौचालय और मिठाई की दुकानों पर समान रूप से भिनभिनाने वाली मक्खी मधुमक्खी से कहीं अधिक पीड़ादायक रोगों की संवाहक होती है। आर्यसमाज में ऐसी मक्खियाँ खूब फूल-फल रही हैं। वेद विद्या की आगार ये मधुमक्खियाँ लालच वश इतना भी नहीं विचार सकतीं कि राम और रावण दोनों का हित साधन करने के सपने देखना आँखों के धोखे से बढ़कर कुछ नहीं। ये दुरभिसन्धि छोड़नी ही पड़ेगी।

अगर यह कहा जाए कि आर्यसमाज के विनाश और बिखराव के लिए दहाई से भी कम व्यक्ति जिम्मेदार है, तो कैसा लगेगा ? महाभारत युद्ध की विभीषिका भी तो पितामह भीष्म की अयुक्त प्रतिज्ञा बद्ध मौन भूमिका के चलते कुटिल शकुनि ने दुर्योधन को कलम बनाकर लिखी थी। शेष सब तो उसके जाल में फँसकर अपनी-अपनी सीमित भूमिका निभाने से आगे बढ़कर कुछ नहीं कर पा रहे थे, आज के शकुनि भी किसी को मोहरा बनाकर पासे फिकवा रहे हैं ! आर्यो ! व्यक्तियों के पक्ष-विपक्ष में लिखना-बोलना छोड़कर ऋषि दयानन्द द्वारा बताए कर्त्तव्यों का पालन करने का संकल्प लो। यह एक अच्छी बात है कि किसी श्रेष्ठ,

सदाचारी, समाज सेवक पुरुष की प्रशंसा व प्रोत्साहन हो और दुर्गुणी, दुराचारी और संकीण स्वार्थों में संलिप्त व्यक्ति का विरोध भी होना ही चाहिए। आर्य समाजी कहे जाने वाले कुछ लोगों ने संसार के प्रवाह में पड़कर अच्छे बुरे की परिभाषा ही बदल दी है। **हमारे स्वार्थ में कहीं न कहीं से, किसी न किसी रूप में सहयोगी भूमिका निभाने वाले सब व्यक्ति सज्जन कोटि में आते हैं और उसमें बाधा पहुँचाने वाले दुर्जन कोटि में।** इन दोनों से हटकर किसी की अच्छाई या बुराई हमारे लिए कोई महत्व नहीं रखती। हमारी स्वार्थ साधना की परिधियों से बाहर दयानन्द और जगन्नाथ दोनों आज के आर्य समाजियों के लिए समान हो जाते हैं। विचारशील आर्यो! खूब गहराई तक डुबकी लगाकर सोचो कि क्या यह सच नहीं है? यदि सच है तो क्या ऐसी प्रवृत्ति आर्यत्त्व पर कलंक नहीं है? यहाँ हम किसी व्यक्ति को आरोपित नहीं कर रहे, लेकिन हर आर्य कार्यकर्त्ता, हर विद्वान् और प्रत्येक आर्य नेता नीर-क्षीर विवेकदृष्टि से स्वयं के व्यवहार और अन्यों के व्यवहार को देखकर बताए कि वह कहाँ खड़ा है? आर्यो! विचार करना सीखो। संकीर्ण स्वार्थों की परिधि से आगे देखना सीखो।। ध्यान रखना जो व्यक्ति अपने सार्वजनिक जीवन में स्वार्थ दृष्टि को सर्वथा त्याग देता है, वह ऐसे अपराध नहीं कर सकता, **निःस्वार्थी व्यक्ति सच को सच कहने के साथ साथ सच सहने का भी साहस प्राप्त कर लेता है।** और किसी भी प्रकार के अपने स्वार्थ साधने वाला व्यक्ति सच को कहने व सहने की शक्ति व सामर्थ्य खो देता है ।सच को कहने और सहने की सामर्थ्य जिस किसी में नहीं है, वह अपने हृदय के हर कोने में दृष्टि ड़ालकर देखे, उसे कहीं न कहीं स्वार्थ कुण्डली मारे बैठा मिल जाएगा।

आर्य समाज की एक विकट समस्या और है, वह है **व्यवहार का सिद्धान्तीकरण या सिद्धान्तों का व्यवहारीकरण!** कुछ महानुभावों का मानना है कि वैदिक सिद्धान्तों को आधार बनाकर हमें अपने व्यवहार को उसके अनुरूप बनाना चाहिए दूसरी ओर देश, काल, परिस्थितियों और संसार की प्रबलता की बात कहकर कुछ लोग वैदिक सिद्धान्तों को व्यवहारिक बनाने के प्रबल पक्षधर हैं। कोई भी विचारशील व्यक्ति आर्यसमाज में चल रहे अन्तर्द्वन्दों के मूल कारण खोजने की दिशा में बुद्धि को दौड़ाएगा तो उसे मिलेगा कि आर्यसमाज के प्रायः सभी पदाधिकारी, जिन्हें हम आर्य नेता कहते हैं और उनके चहेते विद्वान् भी इसी पक्ष में हैं कि सिद्धान्तों का व्यवहारीकरण ही होना चाहिए। यह तो माना जा सकता है कि हम अपने विचार और व्यवहार को ऊँचा उठाने का प्रयास करें। अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य लगाकर, सांसारिक प्रलोभनों के साथ सतत् संघर्ष करते हुए वैदिक सिद्धान्तों से थोड़ी बहुत छूट माँगें तो अच्छा भी लगे। ऐसा करते रहने पर धीरे-धीरे जो छूटें हमने लीं थीं, वो छूटने लगेंगी और हम एक दिन वैदिक सिद्धान्तों को जीवन में पूर्णतः उतार लेने में समर्थ हो जाएंगे। समस्या यह है कि सिद्धान्तों का व्यवहारीकरण करने की माँग वे लोग कर रहे हैं, जिनके जीवन में संध्या, स्वाध्याय और यज्ञ जैसे धर्मानुष्ठान दूर-दूर तक नहीं दिखते। **अपने व्यवहार को वैदिक सिद्धान्तों के निकट न ले जाकर सिद्धान्तों को व्यवहार के निकट लाने के प्रयास करने वालों की संख्या और शक्ति बढ़ती रही तो आर्य समाज इतिहास की वस्तु बनकर रह जाएगा।** आर्यों!

लोगों की आस्थाएँ, निष्ठाएँ और विश्वास जब स्वार्थ के संकेतों पर नाचने लगें, ऋषि दयानन्द की जय बोलने वाले जब ऋषि के आदर्शों, मन्तव्यों और जीवन मूल्यों को कालकूट विष देने लगें, तो हमें अपने कर्त्तव्य पालन में अधिक सावधानी से काम लेना चाहिए। भयभीत होने या निराशा की चादर में मुँह छिपाने की आवश्यकता नहीं है। घोर तम में भी वह सामर्थ्य नहीं कि एक नन्हें से दीपक को प्रकाश देने से रोक सके। प्रकाश की छोटी सी किरण भूमण्डल पर व्याप्त अन्धकर के सामने तब तक सीना ताने खड़ी रहती है, जब तक कि उसका स्वयं का शक्ति स्रोत समाप्त नहीं हो जाता! अपने शक्तिस्रोत को सर्वशक्तिमान् के साथ संयुक्त करके, उस स्वयं प्रकाश स्वरूप प्रभु की प्रभा को अपना शक्तिस्रोत बनाकर जलना सीख लो।

आर्यो! ऋषि दयानन्द का तप, तेज हमें पुकार रहा है। हृदय के कानों से उस पुकार को सुनो। यह सच है कि सबके हृदय वर्तमान की पतनगामी प्रवृत्तियों से पीड़ित हैं। **वैदिक विचार धारा जिस हृदय और मस्तिष्क में एक बार बहते हुए आर-पार भी हो जाती है, वह हृदय और मस्तिष्क मानवीय वेदनाओं के प्रति इतना निष्ठुर नहीं रहता कि युग व्याप्त क्रन्दन का आभास पाकर मौन साध ले।** हम में से बहुतों के हृदयों में वेद ज्ञान के कुछ उत्प्रेरक कण होंगे ही। **कोई है? जो इस संक्रमणशील युग में अपने आर्योचित कर्त्तव्य की पुकार सुनकर ऋषि ऋण उतारने के लिए निःस्वार्थ भावना से आर्यसमाज में क्रान्ति के भाव भर सके?** हमें सशस्त्र क्रान्ति नहीं करनी, हमें वैचारिक क्रान्ति लानी है। स्वार्थ-त्याग इस क्रान्ति का प्रथम संकल्प होगा। आर्यो! आर्यसमाज तो प्रारम्भ से क्रान्तिधर्मी संगठन रहा है! ये विचार एक पुकार है, हर उस आर्य के लिए जो सच्चे हृदय से ऋषि ऋण चुकाना चाहता है। ये आह्वान है उस प्रत्येक आर्य युवक-युवती के लिए जिसके हृदय में सच्चा सुख, सच्ची शान्ति और सच्चा आनन्द प्राप्त करने की इच्छा हिलोरें ले रही है। यहाँ वो आये, जो कुछ पाना नहीं, देना चाहता हो। हम विश्वास दिलाते हैं कि निःस्वार्थ भावना से अपने मानवीय कर्त्तव्यों का पालन करने वालों को ईश्वर बिना माँगे सब कुछ देता है। लिखना-पढ़ना, सुनना-सुनाना बहुत हो गया, अब इससे आगे बढ़ो! कर्मभूमि हमें बुला रही है- हे आर्यो! ऋषि ऋण चुकाने के लिए स्वामी श्रद्धानन्द जी का साहस और संकल्प लेकर कर्मभूमि में कूद पड़ोगे तो विजय हमारी ही होगी—

मुश्किलों से भागना आसान होता है,
हर कदम जिन्दगी का इम्तिहान होता है।
डरने वालों को जिन्दगी में कुछ नहीं मिलता,
संघर्ष करने वालों के पैरों में जहान होता है।।

—राम निवास 'गुणग्राहक'

अथ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका
(वेदोत्पत्ति विषय)

ईश्वर न्याय करने वाला है अथवा पक्षपात ? यदि कहो कि न्याय करने वाला है,तो उसने चार ही व्यक्तियों के हृदय में वेदों का प्रकाश क्यों किया ? सभी मानव मात्र के हृदय में क्यों नहीं किया ! इससे तो वह पक्षपात करने वाला ही जान पड़ता है। आप जो सोचते है, वैसा नहीं है। ईश्वर में अन्याय और पक्षपात का तो नामोनिशान भी नहीं है। उसका यही सबसे बड़ा न्याय है कि वह प्राणियों को कर्मानुसार फल देता है इसलिए जिनके पूर्वजन्मों के पुण्य थे और उन पुण्यों के कारण जिनका आत्मा, अन्त:करण शुद्धपवित्र था उन्हीं के हृदय में ईश्वर ने वेदज्ञान का प्रकाश किया। इस तथ्य को महर्षि ने अपनी भाषा में ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में लिखा है उसे उसी भाषा में उसी प्रकार उद्धृत करते हैं-

ईश्वरो न्यायकार्यस्ति वा पक्षपाती ? न्यायकारी। तर्हि चतुर्णामेव हृदयेषु वेदा: प्रकाशिता:, कुतो न सर्वेषामिती ? अत्राह- अत ईश्वरे पक्षपातस्य लेशोऽपि नैवागच्छति । किन्त्वनेन तस्य न्यायकारिण: परमात्मन: सम्यङ् न्याय: प्रकाशितो भवति । कुत: ? न्यायेत्यस्यैव नामास्ति यो यादृशं कर्म कुर्यात् तस्मै तादृशमेव फालं दद्यात् । अत्रैवं वेदितव्यम्- तेषामेव पूर्वपुण्यमासीद् यत: खलु एतेषां हृदये वेदानां प्रकाश: कर्तुं योग्योऽस्ति ।

किञ्च ते तु सृष्टे: (सृष्टौ) प्रागुत्पस्तेषां पूर्व पुण्यं कुत आगतम् ? अत्र ब्रूम:-सर्वे जीवा: स्वरूपतोऽनादय: । तेषां कर्माणि सर्वं कार्यं जगच्च प्रवाहेणैवानादीनि नादीति सन्तीति । एतेषामनादित्वस्य प्रमाणापूर्वकं प्रतिपादनमग्रे करिष्यते ।

भाषार्थ:- प्रश्न ईश्वर न्यायकारी है व पक्षपाती ?

उत्तर-न्यायकारी । प्रश्न- जब न्यायकारी है तो सबके हृदयों में वेदों का प्रकाश क्यों नहीं किया ? क्योंकि चारों के हृदय में वेदों का प्रकाश करने से ईश्वर में पक्षपात आता है । उत्तर- इससे ईश्वर में पक्षपात का लेश कदापि नहीं आता, किन्तु उस न्यायकारी परमात्मा का साक्षात् न्याय ही प्रकाशित होता है । क्योंकि न्याय उसको कहते हैं कि जो जैसा कर्म करे, उसको वैसा ही फल दिया जाय । अब जानना चाहिए कि उन्हीं चार पुरुषों का ऐसा पूर्व पुण्य था कि उनके हृदय में वेदों का प्रकाश किया गया ।

प्रश्न- वे चार पुरुष तो सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुए थे, उनका पूर्वपुण्य कहाँ से आया ?

उत्तर-सब जीव स्वरूप से अनादि हैं । जीवों के कर्म और स्थूल कार्य जगत् ये प्रवाह से अनादि है इनके अनादित्व का प्रतिपादन प्रमाण पूर्वक आगे करेंगे ।

अनादि और अनन्त इन दो शब्दों को मैं स्वयं के समझने की दृष्टि से कुछ स्पष्ट कर रहा हूँ । जिस

किसी पदार्थ का आदि अर्थात् आरम्भ नहीं होता उसे अनादि कहते हैं ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीनों पदार्थ अनादि हैं । जिस पदार्थ का अन्त अर्थात् समाप्ति नहीं होती उसे अनन्त हैं । ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीनों पदार्थ अनन्त हैं और अनादि भी । क्योंकि इनका आदि और अन्त नहीं है ।

अगले विषय को प्रारम्भ करते हुए प्रश्न किया कि क्या गायत्री छन्दों की रचना भी ईश्वर ने ही की है? यह शंका व्यर्थ ही क्यों और कहाँ से उत्पन्न हो गई? जबकि वह सर्वज्ञ है सर्वविद्यामय है और वेदों का प्रकाश जब उसने किया है तो फिर वेदों के छन्द स्वर क्या किसी और ने बनाये होंगे; नहीं। उनकी भी रचना या प्रकाशन परमेश्वर ने ही किया है। अब इस विषय में महर्षि की ही भाषा में उसी प्रकार लिखते हैं-

किं गायत्र्यादिच्छन्दो रचनमनपीश्वरेणैव कृतम्! इयं कुतः शंकाभूत? किमीश्वरस्य गायत्र्यादिच्छन्दोरचनज्ञानं नास्ति? अस्त्येव, तस्य सर्वविद्यावत्त्वात्। अतो निर्मूला सा शंकास्ति। चतुर्मुखेण ब्रह्मणा वेदा निरमायितषतेत्यैतिह्यम्? मैवं वाच्यम्। ऐतिह्यास्य शब्द प्रमाणान्तर्भावात्। 'आप्तोपदेशः शब्दः' इत्यादि च। अस्यैवोपरि-''आप्तः खलु साक्षात्कृतधर्मा, यथार्थ दृष्टस्यार्थस्य चिरव्यापषिया प्रयुक्त उपदेष्टा, साक्षात्करणमर्थस्याप्तिस्तया प्रवर्तत इत्याप्तः'' इति न्याय भाष्ये वात्स्यायनोक्तेः। अतः सत्यस्यैवैतिह्यत्वेन ग्रहणं नानृतस्य। यत् सत्य प्रमाणमाप्तोपदिष्टमैतिह्य तद् ग्राह्यं नातो विपरीतमिति, अनृतस्य प्रमत्तगीतत्वात्। एवमेव व्यासेनर्षिभिश्चवेदा रचिता इत्याद्यपि मिथ्यैवास्तीति मन्यताम्। नवीनपुराणग्रन्थानां तन्त्रग्रन्थानाञ्च वैयर्थापत्तेश्चेति।

भाषार्थः- प्रश्न-क्या गायत्र्यादि छन्दों का रचन ईश्वर ने ही किया है? उत्तर- यह शंका आपको कहाँ से हुई? प्रश्न- मैं तुमसे पूछता हूँ-क्या गायत्र्यादि छन्दों के रचने का ज्ञान ईश्वर को नहीं है? उत्तर- ईश्वर को सब ज्ञान है। अच्छा तो ईश्वर के समस्त विद्यायुक्त होने से आपकी यह शंका भी निर्मूल है।

प्रश्न- चार मुख के ब्रह्माजी ने वेदों को रचा, ऐसे इतिहास को हम लोग सुनते हैं। उत्तर- ऐसा मत कहो। क्योंकि इतिहास को शब्द प्रमाण के भीतर गिना है। (आप्तो.) अर्थात् सत्यवादी विद्वानों का जो उपदेश है उसको 'शब्द प्रमाण' में गिनते हैं। ऐसा न्याय दर्शन में गौतमाचार्य ने लिखा है तथा शब्द प्रमाण से जो युक्त है, वही इतिहास मानने योग्य है, अन्य नहीं, इस सूत्र के भाष्य में वात्स्यायन मुनि ने ''आप्त'' का लक्षण कहा है कि- जो साक्षात् सब पदार्थ विद्याओं का जानने वाला है, कि- जो साक्षात् सब पदार्थ विद्याओं का जानने वाला, कपट आदि दोषों से रहित धर्मात्मा है, कि जो सदा सत्यवादी, सत्यमानी और सत्यकारी है। जिसको पूर्ण विद्या से आत्मा में जिस प्रकार का ज्ञान है, उसके कहने की इच्छा की प्रेरणा से सब मनुष्यों पर कृपा दृष्टि से सब सुख होने के लिए सत्य उपदेश का करने वाला है। और जो पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त सब पदार्थों को यथावत् साक्षात् करना और उसी के अनुसार वर्तना है, इसी का नाम आप्ति है। इस आप्ति से जो युक्त (होकर व्यवहार में प्रवृत्त) हो, उसको आप्त कहते हैं। उसी के उपदेश का प्रमाण होता है इससे विपरीत

मनुष्य का नहीं, क्योंकि सत्यवृत्तान्त का ही नाम इतिहास है अनृत का नहीं। सत्य प्रमाण युक्त जो इतिहास है वही सब मनुष्यों को ग्रहण करने योग्य है, इससे विपरीत इतिहास का ग्रहण करना किसी को योग्य नहीं। क्योंकि प्रमादी पुरुष के मिथ्या कहने का इतिहास में ग्रहण नहीं होता। इसी प्रकार व्यास जी ने चारों वेदों की संहिताओं का संग्रह किया है, इत्यादि इतिहासों को भी मिथ्या ही जानना चाहिए। जो आजकल के बने ब्रह्मवैवर्तादि पुराण और ब्रह्मयामल आदि तन्त्र ग्रन्थ हं इनमें कहे इतिहासों का प्रमाण करना किसी मनुष्य को योग्य नहीं। क्योंकि इनमें असम्भव और अप्रमाण कपोलकल्पित मिथ्या इतिहास बहुत लिख रक्खे हैं। और सत्य ग्रन्थ शतपथब्राह्मणादि हैं उनके इतिहासों का कभी त्याग नहीं करना चाहिए।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के स्वाध्याय को प्रारम्भ करते समय हमने एक बात कही थी शायद आपको याद होगा, प्रत्येक वेद मन्त्र के साथ ऋषि, देवता, छन्द और स्वर ये चार तथ्य जुड़े हुए हैं। मन्त्र में वर्णित विषय वस्तु= सत्य ज्ञान का दर्शन करने वाला, साक्षात् करने वाला, उसे सुस्पष्ट रूप में प्रथम समझने वाला ऋषि कहलाता है। वह मन्त्र का दृष्टा है कर्ता नहीं। जैसा कि निरुक्तकार महर्षि यास्क कहते हैं- ऋषियो मन्त्र द्रष्टार: न तु कर्तार:।

अब इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए आगे कहते हैं-

यो मन्त्र सूक्तानामृषिर्लिखितस्तेनैव तद् रचितमिति कुतो न स्यात्? मैवं वादि। ब्रह्मादिभिरपि वेदानामध्ययनश्रवणयो: कृतत्वात्। यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वे वेदांश्च प्रहिणेति तस्मै. इति श्वेताश्वरोपनिषदादिवचनस्य विद्यमानत्वात्। एवं यदर्षीणामुत्पत्तिरपि नासीत, तदा ब्रह्मादीनां समीपे वेदानां वर्तमानत्वात्। तद्यथा-

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थं मृग्यजुस्सामलक्षणम्।।
अध्यापयामास पितृन् शिशुराङ्गिरस: कवि:।

इति मनुसाक्ष्यत्वात्। अग्न्यादीनां सकाशाद् ब्रह्मापि वेदानामध्ययनं चक्रे। अन्येषांव्यासादीनां तु का कथा?

भाषार्थ:-प्रश्न- जो सूक्त और मन्त्रों के ऋषि लिखे जाते हैं, उन्होंने ही वेद रचे हों, ऐसा क्यों नहीं माना जाय? उत्तर- ऐसा मत कहो। क्योंकि ब्रह्मा ने भी वेदों को पढ़ा है। सो ''श्वेताश्वतर'' आदि उपनिषदों में यह वचन है कि- जिसने ब्रह्मा को उत्पन्न किया और ब्रह्मादि को सृष्टि की आदि में अग्नि के द्वारा वेदों का भी उपदेश किया है, उसी परमेश्वर के शरण को हम लोग प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार ऋषियों ने भी वेदों को पढ़ा है। क्योंकि जब मरीच्यादि ऋषि और व्यासादि मुनियों का जन्म भी नहीं हुआ था, उस समय भी ब्रह्मादि के समीप वेद वर्तमान थे। इसमें मनु के श्लोकों की भी साक्षी है कि- पूर्वोक्त अग्नि, वायु, रवि और अङ्गिरा

से ब्रह्माजी ने वेदों को पढ़ा था। जब ब्रह्मा जी ने वेदों को पढ़ा था तो व्यासादि की तो कथा क्या ही कहनी है?

आम्नाय आगम श्रुति वेद आदि अनेक नाम ऋक् सहिंतादि के क्यों कहे जाते है इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहते हैं।

कथं वेद श्रुतिश्च द्वे नाम्नी ऋक्सहिंतादीनां जाते इति! अर्थवशात्। विद ज्ञाने, विद सत्तायाम, विद्लृ लाभे, विद विचारणे एतेभ्यो ''हलश्च'' इति सूत्रेण करणाधिकरण कारकयो घञ् प्रत्यये कृते वेदशब्दः साध्यते। तथा ''श्रुश्रवणे'' इत्यस्माद् धातोः करण कारके क्तिन्प्रत्यये कृते श्रुति शब्दो व्युत्पद्यते।

विदन्ति=जानन्ति, विद्यन्ते=भवन्ति, विन्दन्ति विन्दन्ते= लाभन्ते, विन्दते=विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सर्वाः सत्यविद्या यैर्येषु वा तथा च विद्वांसो भवन्ति ते वेदाः। तथादि सृष्टिं आरभ्याद्यपर्यन्तं ब्रह्मादिभिः सर्वाः सत्यविद्याः श्रूयतेऽनया सा श्रुतिः। न कस्यचिद् देह धारिणः सकाशात् कदाचित कोऽपि वेदानां रचनं दृष्टवान्। कुतः? निरवयवेश्वरात् तेषां प्रादुर्भावात्। अग्निवायुवादित्याङ्गिरस्तु निमित्तीभूता वेद प्रकाशार्थमीश्वरेण कृता इति विज्ञेयम्, तेषां ज्ञानेन वेदानामनुत्पत्तेः। वेदेषु शब्दार्थ सम्बन्धाः परमेश्वर देव प्रादुर्भूताः, तस्य पूर्णविद्यावत्त्वात्। अतः किं सिद्धम! अग्निवायुरव्याङ्गिरो मनुष्य देहधारि जीवद्वारेण परमेश्वरेण श्रुतिर्वेदः प्रकाशीकृत इति बोध्यम्।

भाषार्थः-प्रश्न-वेद और श्रुति ये दो नाम ऋग्वेदादिसहिंताओं के क्यों हुऐ हैं?

उत्तर- अर्थभेद से। क्योंकि एक विद्धातु ज्ञानार्थ है दूसरा विद सत्तार्थ है, तीसरे विद्लृ का लाभ अर्थ है, चौथे विद का अर्थ विचार है। इन वचार धातुओं से करण और अधिकरण कारक में घञ् प्रत्यय करने से वेद शब्द सिद्ध होता है। तथा श्रु धातु श्रवण अर्थ में है। इससे करण कारक में क्तिन् प्रत्यय के होने से श्रुति शब्द सिद्ध होता है। जिनके पढ़ने से यथार्थ विद्या का विज्ञान होता है, जिनको पढ़के विद्वान् होते हैं, जिनसे सब सुखों का लाभ होता है और जिनसे ठीक ठीक सत्यासत्य का विचार मनुष्यों को होता है इससे ऋक् सहिंतादि का वेद नाम है। वैसे ही सृष्टि के आरम्भ से आज पर्यन्त, और ब्रह्मादि से लेके हम लोग पर्यन्त जिससे सब सत्य विद्याओं को सुनते आते हैं इससे वेदों का श्रुति नाम पड़ा है। क्योंकि किसी ने वेदों के बनाने वाले देहधारी को साक्षात् कभी नहीं देखा! इस कारण से जाना गया कि वेद निराकार ईश्वर से ही उत्पन्न हुए हैं। और उनको सुनते सुनाते ही आज सब लोग चले आते हैं। तथा अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा इन चारों मनुष्यों को, जैसे वादित्र को कोई बजाने वा काठ की पुतली को चेष्टा करावे, इसी प्रकार ईश्वर ने उनको निमित्त मात्र किया था, क्योंकि उनके ज्ञान से वेदों की उत्पत्ति नहीं हुई। किन्तु इससे यह जानना कि वेदों में जितने शब्द अर्थ और सम्बन्ध हैं, वे सब ईश्वर से ही प्रकट हैं क्योंकि वह पूर्ण विद्यावाला है।

— रामनारायण शास्त्री

ईश्वर-चिन्तन

पूरी मानव जाति के लिये यह एक शुभ संकेत है कि कल तक जो विज्ञान ईश्वर के मरने की घोषणा करता फिरता था, आज वह ईश्वर के अस्तित्व को खुले हृदय से स्वीकार कर रहा है । विज्ञान तो यहाँ तक कहता है कि ईश्वर को स्वीकार किये बिना वह पदार्थों की आन्तरिक व्याख्या कर पाने में असमर्थ है । वनस्पति विज्ञान के विशेषज्ञ डॉ. इरविंग विलियम नौब्लोक लिखते हैं- **''मैं परमात्मा में इसलिए विश्वास करता हूँ, क्योंकि चीजें जिस रूप में भी हैं, उनकी तर्क संगत व्याख्या केवल परमात्मा की दिव्य सत्ता को मानकर ही की जा सकती है।''** इतना ही नहीं विज्ञान जब ईश्वर के बारे में बोलने लगा तो उसने यह भी बता दिया कि वह कैसे ईश्वर को मानता है-भौतिकी के विशेषज्ञ डॉ. जार्ज अर्ल डेविस लिखते हैं-**''मैं ऐसे परमात्मा के बारे में विचार करना पसन्द करता हूँ, जिसने इस चराचर जगत को तो उत्पन्न किया है, किन्तु स्वयं जगत नहीं है। वह इस जगत का शासन करता है और स्वयं इसमें अनुप्रविष्ट है।''** ऐसे अनेक वैज्ञानिकों के उद्धरण दिये जा सकते हैं जो यह प्रकट करते हैं कि विज्ञान द्वारा फैलाई गई नास्तिकता को दूर करने का अभियान छेड़ कर विज्ञान अपने पाप का प्रायश्चित्त कर रहा है। विज्ञान को लगने लगा है कि ईश्वर को न मानना मानवता के लिये अत्यन्त घातक प्रवृत्ति है । प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. ऑस्कर लियो ब्राउ एरे लिखते हैं-**''नास्तिकता का अर्थ है-युद्ध और कलह । वैज्ञानिक के रूप में मैं इनमें से एक को भी पसन्द नहीं करता । सिद्धान्त रूप में मैं इसे तर्क विरुद्ध और मिथ्या मानता हूँ''**

सच यह है कि जब विज्ञान के सामने पुराण पन्थियों का काशी-कैलाश या क्षीर सागर में रहने वाला बाइबिल या कुरान का चौथे या सातवें आसमान में तख्त पर विराजमान ईश्वर था, तो तर्क और युक्ति के सहारे चलने वाले विज्ञान के लिए स्थान विशेष पर रहने वाले ऐसे ईश्वर को स्वीकार करना सम्भव नहीं था । आज भी कोई धर्माचार्य अपने माने हुए ईश्वर को तर्क प्रमाण व युक्तियों से सिद्ध नहीं कर सकता । क्योंकि ईश्वर ऐसा है ही नहीं-ईश्वर तो सर्वव्यापक है, निराकार है, उसका कोई आकार नहीं, वह तो सृष्टि के कण-कण में व्यापक है । जब महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ईश्वर की वेदवाणी के आधार पर ईश्वर के सच्चे स्वरूप को जनता के सामने रखा तो विज्ञान वादियों की भी दृष्टि उस पर पड़ी । इधर विज्ञान के बढ़ते चरण पदार्थों की सूक्ष्म संरचना, परमाणु से लेकर विशालकाय ग्रह, नक्षत्रों में होने वाली स्वाभाविक गति एवं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की विचित्र व्यवस्था की सन्तुलित व्याख्या करने के लिये व्याकुल थे । विज्ञान वादियों को लगा कि वास्तव में इस संसार को बनाने व चलाने वाली कोई परम् सूक्ष्म शक्ति अवश्य है और वह शक्ति ज्ञान सम्पन्न है । इस प्रकार विज्ञान की दृष्टि में ईश्वर का वैदिक स्वरूप उसकी वैज्ञानिक मान्यताओं के अनुसार खरा प्रमाणित हुआ । (शेष पृष्ट 33 पर)

आचार्य उदयवीरजी इतिहास में

लेखक-**राजेन्द्र ''जिज्ञासु''** वेद सदन अबोहर

आर्यसमाज के इतिहास में दो दार्शनिकों को साहित्य सृजन, शोध तथा समाज सेवा के लिए लगभग पौन शताब्दी का समय मिला । आचार्य उदयवीरजी ने शोध के क्षेत्र में निरन्तर सतत साधना की । भारत में किसी विरले ही दार्शनिक को दर्शन के क्षेत्र में सेवा करने के लिए इतना लम्बा समय मिला होगा। प्रत्येक विद्वान् का गवेषक, लेखक का कार्य करने का अपना-अपना ढंग होता है । आचार्य उदयवीरजी का स्वभाव अत्यन्त गम्भीर व शान्त था सो आपकी कार्यशैली अन्य विचारकों, साहित्यकारों से बहुत निराली थी।

आचार्यजी की व्याख्यान प्रवचन आदि में तो लेश मात्र भी रुचि नहीं थी । अपवाद रूप में भी हमने न तो सुना और न ही देखा कि आपने कभी आध पौन घण्टे तक प्रवचन किया हो, या व्याख्यान दिया हो। ज्ञान चर्चा में बड़ा रस लेते थे । उनके जीवन काल मेंअनेक बार उनका सम्मान किया गया । मेरठ विश्वविद्यालय के विद्वानों, विचारकों ने उनका सम्मान करते हुए उन्हें ''ऋतम्भरा'' नाम का बहुत बड़ा अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया था ।

आचार्य उदयवीरजी का आर्यसमाज में मान-सम्मान तो बहुत था परन्तु आर्यसमाज में उन पर उनके व्यक्तित्व के अनुरूप कभी कुछ विशेष लिखा नहीं गया । हमारे पाठकों को यह भ्रम-निवारण करना होगा कि आचार्यजी ने केवल पठन-पाठन व शोध के क्षेत्र में ही देश व समाज की सेवा की है ।

नींव में पड़ा पत्थर:- कभी स्वातन्त्र्य वीर सावरकर ने लिखा था कि मन्दिर के कलश की ओर तो सबका ध्यान जाता है परन्तु , मन्दिर की नींव में पड़े पत्थर की ओर किसी का ध्यान कहाँ जाता है ? आचार्य उदयवीर शास्त्री भी राष्ट्र तथा समाज के भव्य भवन की नींव में पड़े एक पत्थर थे । हुतात्मा भगवतीचरण वीराङ्गना दुर्गादेवी, वीर भगतसिंह, यशपाल आदि के साहसिक कार्यों व सेवा की चर्चा के बिना देश के स्वराज्य संग्राम पर कोई भी लिख नहीं सका । परन्तु कितने इतिहास लेखकों ने इस तथ्य की चर्चा की है कि ये नररत्न इतिहास की धारा मोड़ पाये तो इनके निर्माण में, इनके कार्यों में आचार्य श्री उदयवीरजी का भी ठोस योगदान रहा ।

एक बार सत्यार्थ प्रकाश के नाम पर अनापशनाप लेखनी चलाने वाले श्री रतिराम जी ने आचार्य वीर उदयवीर तथा स्वामी वेदानन्द जी पं. युधिष्ठिरजी की मीमांसक पर मर्यादा का उल्लंघन करके बहुत कुछ लिख दिया । तब श्रीमान् भारतीय जी ने उसी रतिराम का सम्मान करते हुए उन्हें एक सभा में शाल ओढाया था । तब इस लेखक ने तेरहवें समुल्लास के प्रत्येक संस्करण में मुद्रण दोष से छूट गई एक पंक्ति

पर आचार्य उदयवीर जी का ध्यान जाने तथा वह मुद्रण दोष दूर करने की ऐतिहासिक घटना एक लेख में दी थी।

आर्यसमाज में प्राय:- सब भजनोपदेशकों का तथा बहुत से वक्ताओं के बोलने का विषय भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम बन चुका है । ऐसे किसी भी वक्ता को हमने स्वराज्य संग्राम में आचार्य उदयवीर जी की चर्चा करते कभी न सुना है । और न कभी पढ़ा है । श्रीयुत धर्मेन्द्र जी जिज्ञासु ने हुतात्मा भगतसिंह पर अपनी खोजपूर्ण पुस्तक में इस तथ्य पर सप्रमाण प्रकाश डाला है । यह आनन्ददायक बात है ।

आचार्यजी पर लिखने की ठानी थी:- इस सेवक ने आचार्य जी के जीवन काल में ही उनका जीवन चरित्र लिखने का निश्चय कर लिया था परन्तु, यह कार्य लटकता ही गया । श्रीयुत अनिल आर्य बहुत भावनाशील व सूझबूझ वाले आर्य युवक हैं । आपने मेरे पीछे लगा कर यह करणीय कार्य करवा ही दिया है। ''सतत साधना'' नाम का यह ग्रन्थ छप चुका है । पाठकों से और देशवासियों से लेखक का अनुरोध है कि वे इसे पढ़ें, कसौटी पर कसें, परखें और न्याय तुला पर तोलें ।

इसमें क्या-क्या पायेंगे ?- हमने लगभग ४५ वर्ष तक महर्षि के आरम्भिक काल के भक्तों, कृषकों में से किसी का चित्र खोजने के लिए बहुत भाग दौड़ की । ठाकुर मुकन्दसिंह, किशनसिंहजी, भक्त भूपालसिंह, गोपालसिंह किसी का भी फोटो न मिला। हताश होकर चुप बैठना पड़ा । आचार्य उदयवीरजी की जीवनी का कार्य करते हुए ऊहा ने साथ दिया कि आचार्य जी के पिता चौ. पूर्णसिंह जी महर्षि दर्शन करके नवीन ऊर्जा प्राप्त करने वाले उसी काल के एक ऋषि भक्त थे । उनका चित्र इस ग्रन्थ में पहली बार छप रहा है । इतिहास प्रेमी हमारी इस सेवा का मूल्याङ्कन कभी तो करेंगे ।

जब दत्त और भगतसिंह पर अभियोग चला :-असम्बली बम काण्ड के समय दो प्राणवीर भागे नहीं । दोनों ने बन्दी बनने का शौर्य दिखाया । दिल्ली में अभियोग चलाने के लिए जाँच पड़ताल (Interrogation) आरम्भ हुई । ऐसे अवसर पर अभियुक्त का नाम लेने से हर कोई बचता है । धन्य थे आचार्य उदयवीर जो अपने प्यारे भगतसिंह पर बीत रही का पता करने के लिए जाँच अधिकारी ठाकुर जगदीशसिंह के घर पर जा पहुँचे । पूरी प्रमाणिक जानकारी लेकर आये । क्या वह स्वराज्य संग्राम की कोई छोटी सी घटना है । पाठक इस ग्रन्थ में इसका विवेचन पढेंगे ।

भगवतीचरण मथुरा जन्म शताब्दी पर:- स्वराज्य संग्राम की कहानियाँ सुनाने वाले, क्रान्तिकारियों के नामों की तोता रटन लगाने वालों ने यह कभी नहीं सुनाया कि हुतात्मा भगवतीचरण जी पूज्य आचार्य जी के साथ महर्षि की मथुरा की जन्मशताब्दी पर सपरिवार सम्मिलित हुए थे ।

चौ. वेदव्रत कौन थे ?:-प्रिय धर्मेन्द्र जी ''जिज्ञासु'' ने अपने ग्रन्थ में एक चौ. वेदव्रत नाम के आर्यसमाजी की पत्नी विद्यावती की एक घटना दी है । उस देवी ने वीर भगतसिंह के अभियोग के समय

एक पुलिस अधिकारी की मरम्मत कर दी । श्री धर्मेन्द्रजी ने इतना ही लिखा है कि उसके पति एक आर्य समाजी थे ।

उन व्रेदव्रतजी का निधन धूरी में सन् १९६२ में मेरे पास हुआ था । वह स्वतन्त्रता सेनानी प्रखर आर्यसमाजी थे । आप आचार्य उदयवीरजी के शिष्य थे । मेरे साथ उनका बड़ा लगाव था । इस ग्रन्थ में इनकी चर्चा मिलेगी ।

सबसे छोटा बच्चा :- स्वतन्त्रता संग्राम में मुम्बई में क्रान्तिकारियों ने कुछ गोरों पर वार कर दिया । इस हिंसक घटना में एक महिला को भी अभियुक्त बनाया गया । उस देवी का वह छह वर्षीय पुत्र भी उस केस में एक अभियुक्त बनाया गया । वह महिला थी वीराङ्गना दुर्गादेवी बोहरा । व छह वर्षीय बालक शची इसी वीराङ्गना का पुत्र था । यह शची वही था जिसका लालन-पालन आचार्य उदयवीरजी के घर में माता विद्यादेवीजी ने किया था ।

भारतीय स्वराज्य संग्राम में सबसे छोटी आयु का शिशु क्रान्तिकारी जिस पर गोरों की हत्या का दोष लगाकर अभियोग चलाया गया वह हमारे आचार्यजी का व माताजी का प्यारा प्यारा शची था । इस केस में पुलिस ने १५० साक्षियों के नाम दिये परन्तु न्यायालय से दुर्गाजी, शची तथा सब अभियुक्त दोष मुक्त घोषित किये गये । पुलिस उन्हें दोषी सिद्ध न कर सकी ।

आचार्य उदयवीर ने कलङ्क धो दिया :- पं. गिरधर शर्मा चतुर्वेदी सनातन धर्म के मूर्धन्य विद्वान् शास्त्रार्थ महारथी थे । हमने भी उन्हें सुना व देखा था । आपने कभी आचार्य उदयवीर जी का उपहास उड़ाया था । एक बार बड़े सम्मेलन में आपने आचार्य जी को स्वयं यह घटना सुनाई थी कि रेल यात्रा करते समय एक विद्वान् ने उनसे सांख्य दर्शन तथा कपिल ऋषि पर नास्तिकता के आक्षेप की चर्चा की तो पं.गिरधर शर्माजी ने डंके की चोट से उसे कहा कि कपिल ऋषि पर या सांख्य दर्शन पर नास्तिकता के कलङ्क का टीका तो आचार्य उदयवीर जी ने धो दिया है । महर्षि दयानन्द की इस दिग्विजय का सर्वाधिक श्रेय पूज्य आचार्य उदयवीरजी को जाता है ।

देखते हैं कि आर्य जनता इस ग्रन्थ ''सतत साधना'' का हमारे पुरुषार्थ का कितना लाभ उठाती है । हमने तो ८४ वर्ष की आयु में दिन-रात एक करके जी भर कर इस ग्रन्थ के लेखन पर कार्य करके एक तपस्वी का तर्पण कर दिया है ।

यज्ञ, संस्कार व सिद्धान्त निष्ठ, प्रभावशाली प्रवचन के लिए अपने वार्षिक उत्सव आदि पर या किसी पर्व विशेष अथवा शान्ति कथा आदि के लिए सम्पर्क करें ।

-रामनिवास 'गुणग्राहक' 07597894991

एक विलक्षण क्रान्तिकारी पं. रामप्रसाद बिस्मिल

संयुक्त प्रांत के शाहजहांपुर में ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी सं. १९५० को श्री मुरलीधर जी के घर दूसरे पुत्र के रूप में रामप्रसाद बिस्मिल का जन्म हुआ । उनके दादा श्री नारायणलाल जी ग्वालियर राज्य के मूल निवासी थे, वे वहाँ से भाई के दुर्व्यवहार के कारण ये अपने दो पुत्रों मुरलीधर ८ वर्ष व कल्याण मल ६ वर्ष और पत्नी के साथ यहां आ बसे थे । प्रारम्भ में अकाल की मार व अपरिचित होने के कारण श्री नारायण मल जी को महाराणा प्रताप की तरह अनाज में आधा बथुआ मिलाकर रोटियां बनाकर खानी पड़ी । ऐसे अभावों को धैर्य पूर्वक सहते हुए भी इन्होंने पुत्र मुरलीधर को इतना पढ़ा दिया कि उन्हें नगरपालिका में १५ रुपये मासिक की नौकरी मिल गयी । इन्हीं मुरलीधरजी के घर ऐसे देश रत्न ने जन्म लिया जिसे देश भक्त के अपराध में दो बार फांसी का दण्ड मिला ।

बचपन में उदण्ड रहे राम प्रसाद को कुसंगति के कारण भंग और सिगरेट पीने व घर से चोरी करने जैसे दुव्यसनों ने घेर लिया, मगर शीघ्र ही मां की सतर्कता एवं मुंशी इन्द्रजीत के सदुपदेशों के कारण वे बड़े चरित्रवान युवक बन गये । मुंशी जी ने इन्हें महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का अमर ग्रन्थ ''सत्यार्थ प्रकाश'' दिया । यह एक ऐसा आग्नेय व कालजयी ग्रन्थ है, जो अनेक क्रांतिकारियों का प्रेरणा स्रोत रहा है । लाला लजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द, श्यामजी कृष्ण वर्मा, वीर सावरकर, पं. लेखराम, दादाभाई नौरोजी जैसे बलिदानी सत्यार्थ प्रकाश की ही देन है । वीर सावरकर तो अण्डमान की जेल में कैदियों को भी सत्यार्थ प्रकाश पढ़ाते थे । तभी तो अंग्रेज लेखक मि. शिरोल ने इसे ब्रिटिश सामाज्य की जड़ें खोखली करने वाला कहा था ।

इसी सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ कर बिस्मिल लिखते हैं-सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन ने मेरे जीवन के इतिहास में नये पृष्ठ खोल दिये । वस्तुत: इसके अध्ययन से वे पक्के आर्यसमाजी हो गये । इनके पिता को ये अच्छा नहीं लगा तो उन्होंने बिस्मिल से आर्य समाज छोड़ने को कहा । इन्होंने नहीं छोड़ा तो पिताजी ने घर से निकलने तक का कठोर आदेश दे दिया ऐसे में इन्होंने भी 'न्यायात्पथ: प्रविचलन्ति पदं नधीरा: के नीति वचन का पालन कर घर ही छोड़ दिया । वह काल ऐसा ही था । उस समय परमेश्वर की एक मात्र वेदवाणी को मानने का यह दण्ड हर आर्य पुरुष को मिलता था, उन्हीं के त्याग व तपस्या के फल को आज के तथा कथित आर्य भोग ही नहीं रहे बर्बाद कर रहे हैं । संसार के सर्वविधि उपकार के निमित्त इस ऋषि संस्था को कुण्ठित-लुण्ठित करने वालों को वह परम पिता कभी अवश्य यथायोग्य फल देगा ।

बिस्मिल को क्रांतिकारी होने (बनने) की प्रेरणा एक आर्य पुरुष के बलिदान से मिली । आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् इतिहासकार देवता स्वरूप भाई परमानन्द को जब १९१६ में ''लाहौर षड्यंत्र'' में फांसी की सजा सुनाई तो इस पर बिस्मिल स्वयं अपनी आत्म कथा में लिखते हैं उनको फांसी की सजा पढ़कर मेरे शरीर में आग लग गयी । मैंने विचारा किया अंग्रेज बड़े अत्याचारी हैं, मैंने प्रतिज्ञा की कि इसका बदला अवश्य लूँगा । जीवन भर अंग्रेजी राज्य को विध्वंस करने का प्रयत्न करता रहूँगा उसी दिन से मेरे क्रांतिकारी जीवन का सूत्रपात हुआ ।

ऐसे होनहार प्रतिभावान नव युवकों के अनमोल जीवन के बदले प्राप्त हु
अत्यन्त घाटे का सौदा बन कर रह गयी है । जिस स्वतन्त्रता को हम आज भोग
इसकी कल्पना व कामना हमारे किसी क्रांतिकारी ने नहीं की होगी । कुछ कथि
भक्तों के अवांछित कारनामों से सिसकती स्वतंत्रता आज सच्चे अर्थों में हमारे ि
रह गयी है । राष्ट्र को वास्तविक 'स्व' 'तंत्र' कराने में अभी हमें एक महाभारत औ

महाभारत इसलिए कि आज हर देशभक्त मानवता-भक्त अर्जुन के स
ताऊ, गुरु पिता, पितामह जैसे अपने सम्बन्धी खड़े हैं। उनके क्रूर कुटिल व कृतघ
वाले योगेश्वर कृष्ण की आज उतनी ही आवश्यकता हैं । हे बुद्धिजीवियो, हे म
करो। आज के युवक से कहो कि गाण्डीव तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, उठो आज
दुर्योधनों के चेहरों से पितामह, गुरु का मुखौटा नोंच कर फेंक डालो । और कह
पाप न मारने योग्य को मारने से लगता है, वही पाप मारने योग्य को न मारने
राष्ट्र के युवक की रगों में दौड़ता हुआ बिस्मिल का रक्त पुकार-पुकार कर कह रह
झको सहस्रों बार भी, तो भी न मैं इस कष्ट को निज ध्यान में लाऊँ कभी।
बा मेरा जन्म हो । कारण सदा ही मृत्यु का देशोपकारक कर्म हो ।

महर्षि देव दयानन्द सरस्वती जी महाराज बड़ी वेदनापूर्ण शब्दों में लिखते
पतन के गर्त में गिर जाती है तो उसका सम्भलना बड़ा दुष्कर होता है ।'' दुर्भाग्य से
जाति के लिए भारत के संदर्भ में की थी । उनकी यह टिप्पणी आज बहुत गहरी चुभन
हमारे सामने है । भारतवासी **दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल**, गाते - गाते
माता ने अपने मंगल पाण्डे से लेकर सुभाष चन्द्र बोस तक अगणित लालों का लहू
बहते हुए देखा है । युवा रक्त की गर्मी से जिस भारत माता का हृदय तप रहा हो उसके
खडग बिना ढाल का राग अलापना उस माँ के होनहार सपूतों के खून को गाली देने
। ब्रिटिश पार्लियामेण्ट जिनको 'कायर' व 'डरपोक' का खिताब देती है, उन्हें हम स
मानकर चलें तो यह राष्ट्र की वीरता को अपमानित करने का अपराध होगा । विडम
लहू को गाली देने का पाप, राष्ट्र की वीरता को अपमानित करनें का अपराध पूरे भा
वर्षों से अंग्रेजों के कहने पर भरत की शिक्षित-अशिक्षित जनता निःसंकोच भाव से व
हमारा दृढ़ विश्वास है कि इस अधर्म का कुपरिणाम भारत को बहुत दुर्दशा के रूप में
पडेगा । जब हम अपने सुभाष, बिस्मिल, आजाद, भगतसिंह, अशफाक, भाई परमान
और वीर सावरकर जैसे प्रतिभावान प्रखर पुरुषों का जीवन चरित्र पढते हैं तो लगता है
स्वाधीनता के लिए अपने सर्वोत्तम सपूतों का तन मन धन सर्वस्व न्यौछावर कर डाला
लोग, क्या प्रतिभा थी उनके अन्दर, कैसे मस्ताने थे वे लोग ? काश ! स्वाधीनता के

सुभाष व सावरकर जैसे राष्ट्र भक्त को मिल जाता तो भारत आज विश्व का शिरोमणि देश होता ।

बिस्मिल के जीवन व विचारों की कतिपय झलकियाँ देखें कि हमने कैसे त्यागी, तपस दृष्टा महापुरुषों के गर्म लहू पर झूठी अहिंसा का लेबल लगाकर राष्ट्र घात किया है । भाई परम फाँसी की सजा का समाचार पढ़कर उद्वेलित हुए बिस्मिल ने तभी संकल्प लिया कि मैं जीवन भर अ ब्रिटिश शासन के विरूद्ध लड़ता रहूँगा । जब बिस्मिल ने यह संकल्प अपने गुरु स्वामी सोमदे बताया तो उन्होंने कहा–पुत्र संकल्प लेना और काम है और उसे निभाना बहुत कठिन है। बिस्मिल ने चरणों की कृपा रही तो यह व्रत पूर्ण होकर रहेगा । इतिहास साक्षी है कि रामप्रसाद बिस्मिल ने अ प्रण प्राण देकर पूरा किया । रामप्रसाद बिस्मिल एक सुन्दर, सुडौल व शक्ति शाली शरीर के वीरता व निडरता उनको विरासत में मिली थी । उनके जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव उनकी माताज सोमदेव जी का पड़ा । बिस्मिल बड़े भावुक होकर काल कोठरी में अपनी माँ के प्रति लिखते हैं **जी तुमने इस शरीर को जन्म देकर पालन–पोषण ही नहीं किया किन्तु आत्मिक धार्मिक तथा स उन्नति में तुम्हीं सदैव सहायक रहीं ।** बिस्मिल के गुरु सोमदेवजी धार्मिक पुरुष होने के साथ ही भी थे । उस समय के आर्य समाजी विद्वानों का देशभक्त होना पहला लक्षण था ।

स्वामी सोमदेव ने लाला लाजपतराय के निष्कासन पर एक लेख 'अंग्रेजों को चेतावनी लिखा । लेख बहुत ही प्रभावोत्पादक था । बिस्मिल उसकी कुछ पंक्तियाँ आत्म कथा में उद्धृत ''अंग्रेज अब भी न समझेंगे तो वह दिन दूर नहीं कि सन १८५७ के दृश्य दिखाई दें । अंग्रेज बच्चों किया जाए उनकी रमणियों की बेइज्जती हो इत्यादि किन्तु यह सब स्वप्न है । यह अन्तिम वाक्य अंग्रेज उनका कुछ न बिगाड़ सके । ऐसी वीर माँ का सपूत, एक प्रखर देश भक्त संन्यासी व बिस्मिल दोनों आदर्शों के सद्गुणों का अनौखा मिश्रण था ।

रामप्रसाद बिस्मिल स्वयं एक बहुत सिद्ध हस्त लेखक थे, उनकी आत्म कथा जहाँ ऐ दृष्टि से गौरवपूर्ण कृति है वहीं साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त रोचक एवं प्रेरणा पूर्ण है । जेल की क में बैठकर बड़ी सावधानी पूर्वक लिखी गई यह कृति–क्या कहना है, क्या छिपाना है, कितना क आदि तथ्यों का विलक्षण उदाहरण है । अपने अभिन्नमित्र अशफाक उल्ल खाँ को बिस्मि आत्मीयता में डूब कर स्मरण करते हैं, यह देखते ही बनता है उनकी रोचक शैली का एक उदाहर **अपनी काल कोठरी की स्थिति बताते हैं–''इसी कोठर में भोजन, स्नान, मल, मूत्र, त्याग त आदि होता है । मच्छर अपनी मधुर ध्वनि रात भर सुनाया करते हैं। बड़े प्रयत्न से रात्रि में घण्टे नींद आती है । कभी–कभी एक दो घण्टे सोकर भी निर्वाह करना पड़ता है । बड़े जीवन है ।साधना के सब साधन एकत्रित हैं । प्रत्येक क्षण शिक्षा दे रहा है–अन्तिम समय तैयार हो जाओ।''** ऐसी दुर्दशा का क्या मस्ती भरा विवरण दिया है । **— धर्मप्रकाश विद्**

आर्यसमाज का प्रचार कार्य : एक दृष्टि

"गुण ग्राहक"

दो दशक से अधिक के अपने आर्य समाज से जुड़े जीवन में मैंने प्रचार से जुड़े हुए हर पक्ष को बड़ी गम्भीरता से देखा, जाँचा और परखा । प्रचार क्षेत्र में जीवन खपा देने वाले वयोवृद्ध सज्जनों से लेकर ऊर्जा और उत्साह से भरे हुए हमारे युवा विद्वानों से इस विषय पर वार्तालाप और संवाद भी कई बार किया। उपदेशकों के साथ-साथ मैंने कई विचारशील पदाधिकारियों के साथ बैठकर समस्याओं व सम्भावनाओं पर लम्बी-लम्बी चर्चाएँ कीं। इन सबके चलते मुझे निष्कर्षत: जो अनुभव मिले, वे बड़े व्यथित मन से रखे । समस्याओं पर सबने खूब बोला, लेकिन जब बात समाधान की चलती तो लगा कि किसी का हृदय समस्याओं से निकलकर सम्भावनाओं के सागर में नाव डालने को तैयार नहीं दिखा । मेरा सदा से ही यह विचार रहा है और अनुभव जन्य निश्चय रहा है कि **कुण्ठित मानसिकता हताशा और आशंकाओं से ग्रस्त मनो मस्तिष्क लेकर कभी किसी ने कोई सफलता प्राप्त नहीं की।** लोग समझते हैं कि सफलता संसाधनों के बिना नहीं मिलती लेकिन यह अर्ध सत्य है । पूरा सच तो यह है कि **सफलता के लिए संकल्प शक्ति पहला आधार है, संकल्प शक्ति संसाधनों को जुटा सकती है । लेकिन संसार के सारे संसाधन मिलकर संकल्प शक्ति नहीं जुटा सकते ।** आर्य समाज की प्रचार पद्धति की बात करें इसके लिए संसाधनों का रोना नहीं रोया जा सकता । आज से सौ वर्ष पूर्व हमारे पास संसाधन कहाँ थे, लेकिन **संकल्प शक्ति के धनी आर्यों के बल पर आर्य समाज ने जो कर डाला वह आज के साधन सम्पन्न लोगों के लिए आसमान के तारे तोड़ लाने जितना असम्भव दिखता है ।**

यह सब गिरावट क्यों आई ? इस बात का हम निष्पक्ष होकर न्याय बुद्धि से विश्लेषण करेंगे तो पता चलेगा कि हमारी पूर्व पीढ़ियों ने साधन न होने पर भी केवल अपनी सिद्धान्त निष्ठा, कर्त्तव्य परायणता, परोपकार की भावना जैसे सद्गुणों से सृजित संकल्प शक्ति के सहारे संसार को वेद ज्ञान से आलोकित कर दिया था । हमारे पास साधन बहुत बढ़ गये हैं, हम काम भी बहुत कर रहे हैं, लेकिन **सद्भावनाओं व सद्गुणों के साथ जीवित रहने वाली सिद्धान्त निष्ठा और संकल्प शक्ति के अभाव में हम ऋषि दयानन्द के जीवन भर के तप-त्याग और उस ऋषि के अमर बलिदान को निर्जीव करने का अपराध कर रहे हैं।** मैं जब हमारे कर्णधारों के कार्यकलापों को देखता हूँ तो मुझे एक कहानी याद आ जाती है । कहानी बड़ी रोचक है, संक्षेप में इस प्रकार है-एक बार जंगल के जानवरों ने शेर के अत्याचारों से पीड़ित होकर सोचा कि हमें मार कर खा जाने वाला जंगल का राजा कैसे हो सकता है ? अब लोकतंत्र का युग है हम स्वयं राजा चुनेंगे । सबने विचार करके बन्दर को राजा बना दिया । शेर को पता चला तो वह एक बकरी के बच्चे को पकड़ लाया और एक पीपल की छाया में बैठ गया । बकरी बन्दर के पास गई कि तुम राजा हो

मेरे बच्चे को शेर से बचाओ । बन्दर बकरी के साथ पीपल तक गया और शेर की दृष्टि बचाकर पेड़ पर चढ़ गया । पेड की एक डाल से दूसरी डाल पर भाग-दौड़ व उछल-कूद करने लगा । बकरी बोली मेरे बच्चे को शेर के चंगुल से छुडा, नहीं तो वह मार कर खा जाएगा । बन्दर बोला देख तेरा बच्चा बचे या न बचे यह अलग बात है, मेरी भाग दौड़ में कोई कमी हो तो बता ? हमारे चुने हुए कर्णधार भी ठीक ऐसे ही है । इनसे कहो कि आर्यसमाज के प्रचार कार्य का परिणाम क्या निकला ? एक आर्यसमाज व प्रान्तीय सभाएँ बतायें कि एक वर्ष के प्रचार कार्यों पर आपने जो खर्च किया है उसकी उपलब्धि क्या है ? कितने नये आर्य बनाये कितने आर्यों को सिद्धान्तनिष्ठ बनाया ? तो हमारे कर्णधार चुनाव से राजा बने बन्दर की ही तरह अपनी भागदौड़ व देश विदेश की यात्राओं का विवरण सुना देते हैं । अपने वार्षिक बजट व निर्माण कार्यों की सूची भी सुना देते हैं, इतने पर भी कोई सार्थक परिणाम नहीं निकल रहा तो "यत्ने क्रियते यदि सिद्ध्यति कोऽत्र दोष:" अर्थात् खूब प्रयत्न करने पर भी कोई परिणाम नहीं निकल रहा तो मैं क्या करूँ ? मेरी भाग दौड़ में कोई कमी हो तो बताओ ?

सुधी पाठक वृन्द ! हम सब जानते हैं कि कमी कहाँ है और क्या है ? बातें बनाने और तर्क देने से परिस्थिति नहीं बदलती । परिस्थिति बदलने के लिए वर्तमान परिस्थितियों का सटीक आंकलन करके जो हम नहीं चाहते उस परिस्थिति को दूर करने और जो चाहते हैं, वह बनाने के लिए कठोर निर्णय लेने पड़ते हैं और उन निर्णयों को कार्यान्वित करना पड़ता है। उस क्रियान्वन के लिए हमें उसी स्तर का तप भी करना पड़ता है । एक बात हम सभी गाँठ-बाँध लें कि **आर्य समाज का जन्म और जीवन केवल और केवल वेद प्रचार ही है, अन्य कुछ नहीं । अन्य जितने भी कार्य हैं वे हमारे जीवित होने के लक्षण हैं।** आज हम स्वयं को निर्जीव नहीं कहना चाहें तो निर्बल और निष्प्रभावी तो कहना, मानना ही पड़ेगा । हम निर्बल और निष्प्रभावी हैं। तो इसका मूल कारण यह है कि हमारा वेद प्रचार कार्य निर्बल है, निष्प्रभावी है । थोड़े से हमारे वैदिक विद्वानों को अलग कर दें तो हमारे पास जो कुछ बचता है उनके जीवन में संध्या-स्वाध्याय की प्रवृत्ति नहीं दिखती । **संध्या-स्वाध्याय से शून्य जीवन निर्दोष नहीं रह सकता ।** किसी को भी अच्छा नहीं लगेगा अगर यहाँ हमारे उपदेशकों के जीवन में व्याप्त दोषों का वर्णन किया जाए । किसी को कुछ कहने सुनने की आवश्यकता नहीं है, सब जानते हैं, अधिकांश भोग भी चुके हैं । आवश्यकता इस बात की है कि अगर हम ऋषि दयानन्द का कार्य करना चाहते हैं तो लालची, असंयमी, संध्या-स्वाध्याय शून्य सुविधाभोगी और चारित्रिक दृष्टि से सन्दिग्ध उपदेशक कहलाने वालों को प्रचार कार्य के लिए बुलाने से बचें । ऐसे लोगों से ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द जैसे त्यागी, तपस्वी और बलिदानी महामानवों का अधूरा काम आगे नहीं बढ़ाया जा सकता । उनका कार्य आगे बढ़ाने के लिए उन्हीं की कोटि का त्यागी-तपस्वी न सही मगर उनके पदचिन्हों पर चलने की प्रबल इच्छा शक्ति वाला आर्य तो होना ही चाहिए । ध्यान रहे आर्य समाज में ऐसे सज्जनों की कमी नहीं है और कमी है भी तो ऐसे सज्जनों को मान सम्मान

और पद-प्रतिष्ठा देकर बहुतों को ऐसा बनाने की प्रेरण व प्रोत्साहन दिया जा सकता है । संसार का सिद्धान्त है कि जिसकी माँग होती है उसका उत्पादन भी बढ़ जाता है, आर्यों को इस दिशा में अवश्य सोचना होगा और अभी सोचना होगा ।

हम मूलत: प्रचार-पद्धति को लेकर एक महत्त्वपूर्ण चर्चा करना चाहते हैं । हमारी वर्तमान प्रचार - पद्धति आज उतने प्रभावकारी परिणाम नहीं दे पा रही है जितना कि देना चाहिए । ऐसा नहीं कि यह प्रचार पद्धति असफल पद्धति है, हमारे प्रथम पीढ़ी के आर्यों ने इसी पद्धति से काम करके सफलता प्राप्त की थी । लेकिन आज इसके असफल होने के कई कारण हैं। आर्यसमाज के किसी उत्सव का न्यूनतम व्यय लाखों में होता है, ऐसे में नियमित और बड़ी आय का स्रोत न हो तो कोई आर्य समाज चाहकर भी प्रचार कार्य नहीं कर सकता । एक अनुभव से प्राप्त तथ्य और बता दूँ कि शहरों में होने वाले प्रचार कार्य अर्थात् वार्षिक उत्सवों का कोई विशेष प्रभाव या लाभ दिखाई नहीं देता । जब तक किसी प्रचार कार्य के बाद किन्हीं 10-20 नये व्यक्तियों का आर्यसमाज से जुड़ाव या लगाव नहीं होता तब तक लाखों का व्यय निरर्थक ही माना जाएगा । सब जानते हैं कि ऐसा होना या करना कभी हमारे उत्सवों का ध्येय रहा ही नहीं । हम तो लकीर पीटकर अपनी पीठ थपथपा कर लेते हैं । ऐसा ही चलता रहा तो परिणाम भी ऐसे ही निकलेंगे और भविष्य के इतिहासकार हमारी गिनती पतनशील प्रवृत्तियों के पक्ष-पोषकों में ही करेंगे । हमें इस ढाँचे से निकल कर कुछ सोचना होगा, कुछ करना होगा ।

प्रचलित प्रचार-पद्धति की कुछ व्यावहारिक न्यूनताओं पर चर्चा कर लेना भी ठीक रहेगा । हमारे इन उत्सवों अर्थात् प्रचार कार्य में जन-धन का जो व्यय होता है उसके चलते हमारे आर्य समाज के कार्यकर्त्ता व सदस्य गण कई दिन पहले से लग जाते हैं। दान माँगने जाना, टैण्ट वाले, माईक वाले से लेकर सजावट करने वाले और हलवाई तक का प्रबन्ध करना । होर्ड़िग लगाने निमंत्रण पत्र छपवाने से लेकर आगन्तुकों की रहने-खाने की व्यवस्था करना । ऐसे छोटे-मोटे बहुत कार्य हैं जिनके करने कराने में दिन-रात एक कर देने वाले कार्यकर्त्ताओं को इतना सोचने-विचारने व सुनने-समझने का समय ही नहीं मिल पाता कि हमारे विद्वानों ने क्या कुछ कहा । जैसे किसी घर में विवाह हो तो घरवाले विवाह के 8-10 दिन पहले से लेकर 1-2 दिन बाद तक भागते दौड़ते हुए व्यवस्थाओं में ही व्यस्त-त्रस्त रहते हैं । मन और मस्तिष्क में एक ही चिन्ता रहती है कि कोई कमी न रह जाए, कोई काम न बिगड़ जाए, कोई सगा सम्बन्धी रुष्ट न हो जाए । ठीक यही स्थिति आर्यसमाज के सक्रिय कार्यकर्ताओं की रहती है, वे भी उत्सव के दो दिन बाद सन्तोष की सांस ले पाते हैं, उनके लिए तो प्रचार कार्य और उत्सव व्यवस्थाओं का बवण्डर बन कर रह जाता है । इतना कुछ करने के बाद भी परिणाम ढ़ाक के तीन पात ही रहे तो सब कुछ बड़ अटपटा सा लगता है । प्रचार कार्य के सम्बन्ध में हम सबका यह साझा अनुभव है । इस अनुभव से कुछ सीख लेकर हमें कुछ नया और प्रभावोत्पादक कार्य करना होगा ।

महर्षि यास्क की दृष्टि में पर्वपद्धति

[उदयनाचार्य, निगमनीडम्-वेदगुरुकुलम्, पिडिचेड़, गज्वेल, मेदक (आं. प्र.) ५०२२७८]

शास्त्रीय दृष्टिकोण से हमने जान लिया था कि पर्व दिनों में विशिष्ट यज्ञों का आयोजन किया जाता था, तथा कुछ विशिष्ट नियमों, व्रतों का पालन किया जाता था और उसके लिये भौतिक कार्यों को त्यागा जाता था। पर्व दिनों में व्रताचरण अनिवार्य होने के कारण कालान्तर में साहचर्य नियम से पर्व एवं व्रत समानार्थक बन गये। दुर्भाग्यवशात् जब वैदिक परम्परा नष्ट होकर पौराणिकता प्रबल हुई, तब अनेकानेक अवैदिक, अशास्त्रीय व्रत एवं पर्वों का प्रचलन हुआ। आजकल जो पर्व (उत्सव) मनाये जाते हैं, उनमें अधिकांश पर्व इसी युग की देन हैं, वैदिक वा आर्षयुग में इनकी कोई ऐतिहासिकता नहीं दीखती। पुराण एवं निर्णयसिन्धु, हेमाद्रि, कृत्यरत्नाकर आदि-आदि अनेक अवैदिक ग्रन्थों में जिन व्रतों वा पर्वों (उत्सवों) का वर्णन है, उनकी सूची ही इतनी लम्बी है कि वह एक ग्रन्थरूप धारण कर लिया है (द्र. धर्मशास्त्र का इतिहास, डॉ.पी.वी.काणे, भाग-4, पृ.96-237)।

यथार्थ में व्रतों व पर्वों का मूल उद्देश्य है कि व्यक्ति अपनी आत्मिक उन्नति करते हुए मोक्ष को प्राप्त करें। उसकी साधना व पद्धति अष्टांग योग के रूप में योगदर्शन में विस्तृत रूप से प्रतिपादित है। उसमें यम(=अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह), एवं नियम (=शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान) का जाति, देश, काल, समय के भेदों से रहित होकर पालन करने को महाव्रत कहा गया है-**''जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्''** (योग.2.31)। मनुष्य में अज्ञान, आलस्य, प्रमादादि के कारण स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष, मोह आदि उत्पन्न होते हैं। अतः उनसे दूर रखकर **मनुष्य को आध्यात्मिकता की ओर आकर्षित करना ही पर्वों (उत्सवों) का प्रधान उद्देश्य है।** यहाँ प्रसंगतः यह बतलाना भी अनावश्यक प्रतीत नहीं होता कि उपवास का वैदिक या यथार्थ स्वरूप क्या है?

उप समीपे यो वासो जीवात्मपरमात्मनोः।
उपवासः स विज्ञेयो न तु कायस्य शोषणम्।। (वराहोपनिषद्-2.39)

जीवात्मा का परमात्मा के समीप वास करना वा उसके के लिए प्रयत्न करना ही उपवास (महाव्रत) कहा जाता है, न कि भोजन बन्द कर शरीर को सुखाना। वह तो उपवास शब्द का अर्थ ही नहीं है। आजकल तो उपवास शब्द उपहास्य बन कर रह गया। उपवास के नाम से दुगुना खाया जाता है, अस्तु।

पर्वों के विशेष सन्दर्भों पर अवैदिक अर्थात् पौराणिक व्रतों के आचरण से वैदिक परम्परा नष्ट हो जाती है। यह एक अक्षम्य अपराध है, पाप है। अत एव हमें वेद आदेश देता है कि-**''स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हिंसीरदितिं विराजम्''** (यजु.13.43) अर्थात् वह जिज्ञासु, मुमुक्षु पूर्णिमा, अमावस्या आदि पर्वों में अनुष्ठीयमान यज्ञों के द्वारा और प्रत्येक ऋतुओं में किये जाने वाले यज्ञ वा ऋतुचर्या (ऋत्वनुकूल व्यवहार) के द्वारा शक्तिशाली होता हुआ वेदवाणी की अविच्छिन्न परम्परा का विघात न करे

अथवा यज्ञो में गाय आदि पशुओं की बलि न दे। तात्पर्य है कि हमें वेदविरुद्ध नहीं चलना चाहिए। पुनः पर्वों पर हमें क्या करना चाहिए? पर्वों को हमें कैसे मनाना चाहिए? इसमें भी हमें वेद मार्गदर्शन करता है-"**भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणा-पर्वणा वयम्**" (ऋ.1.94.4.) हे ईश्वर! हम आपकी प्राप्ति के लिए अपने अन्तरात्मा में ज्ञानरूपी इध्म (समिधा) को धारण करेंगे, प्रदीप्त करेंगे। इसके लिए हम (पर्वणा-पर्वणा) प्रत्येक पर्व पर आपका ही स्मरण करते हुए, आपकी ही उपासना (=उपवास रूपी व्रत) करते हुए हवियाँ प्रदान करें अर्थात् यज्ञ-याग करें। यह है पर्वों को मनाने की प्राचीनतम वैदिक पद्धति। वेद अन्यत्र कहता है कि "**समानृधे पर्वभिर्वावृधानः**" (ऋ.10.79.7.) उपासक जीव अपने में सद्गुणों को पूर्ण कर उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त करते हुए अपने में जीवन को पूर्ण करता है, चरितार्थ करता है। यही मानव का धर्म भी है। जैसे कहा गया है "**त्रयो धर्मस्कन्धाः-यज्ञोऽध्ययनं दानमिति**" (छा.उप.2.23.1) अर्थात् धर्म के तीन आधार हैं-1. यज्ञ, 2.वेदों का स्वाधाय और 3.दान। ये तीनों ही पर्वों (उत्सवों) पर किय जाते थे। "**यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः**" (वैशेषिकदर्शन 1.1.2)- जिससे इहलौकिक सुख और निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष प्राप्त हो, वही धर्म है। इस प्रकार वैदिक पर्व पूर्णतया धर्ममय थे। अब हम निरुक्त के तीसरे निर्वचन की ओर प्रस्थान करते हैं। "तत्प्रकृतीरत् (अपि पर्व), सन्धिसामान्यात्" अर्थात् जिस प्रकार मासादि सन्धियों को पर्व कहा गया है, वैसे ही अन्य वस्तुओं की सन्धियों को भी 'पर्व' कहा जाता है। जैसे हड्डियों की सन्धियों (जोड़), बांस की गांठ, पहाड़ों के जोड़ आदि। इस अर्थ को महर्षि दयानन्द ने भी प्रकट किया "**पिपर्तीति पर्व, ग्रन्थिर्वा**" (उणादि.4.114)। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से इस अर्थ के वैदिक प्रयोगों को भी हम यहाँ दिखाते हैं:-"**निर्मज्जानं न पर्वणो जभार**" (ऋ.10.68.9) अज्ञान की ग्रन्थी (गांठ) रूपी बन्धन में लिप्त जीव को (ईश्वर) मुक्त करें। "**प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि**" (ऋ.10.87.5, अथर्व.8.3.4) ज्ञानी पुरुष अपने अज्ञानमय ग्रन्थियों को नष्ट करें। इस अज्ञानरूप पर्वत को तोड़ने का प्रकार व विधि दूसरे निर्वचन की व्याख्या में दिखा चुके हैं।

अभी तक हमने महर्षि यास्क के निर्वचन के माध्यम से जाना कि **वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक स्तर पर मानसिक एवं आत्मिक सुख-शान्ति को प्राप्त करने की साधना वा पद्धति ही "पर्व" कहने योग्य है।** केवल कुछ मिष्टान्नादि बनाकर व खाकर खुशी मनाना मात्र पर्व नहीं हैं, न ही वह पर्व शब्द का अर्थ है। **सांसारिक जीवन में स्वार्थादि उत्पन्न होकर मनुष्य का जीवन केवल भौतिकता की ओर प्रवाहित होने लगता है, जिसे मध्य-मध्य में मनाये जाने वाले पर्व आध्यात्मिकता की ओर परिवर्तित कर लेते हैं। यही पर्वों का मूल उद्देश्य है। जिसे मानव समाज को जानना अनिवार्य ही नहीं, अपितु परम आवश्यक है।**

संवत्सर शब्द में ही याज्ञिक एवं आध्यात्मिक अर्थ समाहित हैं। संवत्सर शब्द "सर्व+त्सर" शब्दों

से बनता है। 6. त्सर छद्मगतौ (भ्वा.373) धातु का अर्थ है कि-गुप्तरूप से चुपचाप जाना, पहुँचना, प्राप्त करना। जो अज्ञात रूप से सर्वत्र एवं सब में व्याप्त हो जाता है, वही संवत्सर कहलाता है। सम्पूर्वक वस-निवासे (भ्वा.731) धातु से औणादिक 'सरन्' चित् प्रत्यय होकर भी संवत्सर शब्द बनता है। जिसमें सभी ऋतु संगठित होकर क्रम विशेष में वसते हैं वही संवत्सर कहलाता है। संवत्सर वसंत ऋतु से आरम्भ होता है। वेद कहते हैं कि वसंत ऋतु आज्य (घी) के समान है-**''वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्मऽइध्म शरद्धविः''** (ऋ.10.90.6, यजु. 31.14, अथर्व.19.6.10)। आज्य एक मधुर एवं स्निग्ध (स्नेह युक्त) पदार्थ है। वसंत ऋतु में भी सर्वत्र हरित रूपी स्नेह दृष्टगोचर होता है। ग्रीष्म ऋतु के समान कहीं भी शुष्कता दिखाई नहीं देती। वैसे ही मनुष्यों में भी माधुर्य, प्रेम, स्नेह रूपी आज्य व्याप्त हो जाय तो वह मानवीय वसंत ऋतु है, मानवीय संवत्सर का आरम्भ है। ऐसे दिव्य गुण से मनुष्य सभी के हृदयों में गुप्तरूप से प्रवेश कर जाता है और उनमें बस जाता है। ऐसे स्निग्ध आज्य से ही देवताओं ने अर्थात् दिव्यगुणयुक्त स्नेही महापुरुषों ने सभी कामनाओं को जीता है और अमरत्व को प्राप्त किया है। (7.) इध्म (समिधा) अग्निप्रधान है। इसीलिए वह ग्रीष्म ऋतु का प्रतीक है। शरद् ऋतु में अन्न पक जाता है। उस पके हुए नये अन्न से यज्ञों में हवियां (आहुतियां) दी जाती हैं, अत एव शरद् ऋतु हवि का प्रतिनिधि है। परोपकार की भावना, सभी प्राणियों के प्रति मित्रदृष्टि रखना अर्थात् स्नेह रूपी आज्य से सभी को प्रसन्न करना, आनन्दित करना ही वैयक्तिक संवत्सर का वसंत ऋतु है। अपने में और समाज में व्याप्त सभी दुरितों को, आसुरी भावों को इध्म (समिधा) के समान भस्म करना ही ग्रीष्म ऋतु है। यही यथार्थ सांवत्सर यज्ञ है, पार्वण यज्ञ है।

अन्त में पर्व की इतिकर्तव्यता वा सार्थकता का बोध कराने वाले मन्त्र को उद्धृत कर अपने विचारों को विराम देते हैं-

यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः।
सर्वं तदेषां समृधेव पर्व यत्सुवाचो वदथनाध्यप्सु।। (ऋ.7.103.5)

गुरुजनों के सान्निध्य में रहकर ब्रह्मचारी (ब्रह्म में विचारने वाला शिष्य) पूर्ण विद्वान् होकर, ज्ञानी, विवेकी बनकर प्रजाओं में व शिष्यों में गुरुजनों से प्राप्त वेदज्ञान को और पालन करने योग्य (पर्व) ब्रह्मचर्यादि व्रत आदि को परिव्याप्त करें अर्थात् वेदज्ञान का प्रचार-प्रसार करना प्रत्येक मनुष्य का पर्व (पालन करने योग्य) है, कर्तव्य है।

6. स सर्वत्सरोऽभवत्, सर्वत्सरो ह वै नामैतद् यत संवत्सर इति (शतपथ. 11.1.6.12)।
7. आज्येन वै देवाः सर्वान् कामान् अजयन्, सर्वममृतत्वम् (कौषीतकी ब्रा. 14.1)।

विश्व की अस्मिता की संवाहक अस् तथा भू धातुएँ

डॉ. सुद्युम्न आचार्य
निदेशक वेदवाणी वितान
कोलगवाँ, सतना, (मध्यप्रदेश)

सहसा विश्वास नहीं होता कि संस्कृत की दो छोटी छोटी धातुओं ने विश्व की यात्रा की होगी तथा विश्व की अस्मिता की सुरक्षा की होगी । यह सर्वमान्य है कि कोई भी वाक्य क्रिया के बिना अधूरा होता है तथा कोई भी क्रिया होना के बिना अधूरी होती है । हम इस 'होना' क्रिया के बिना किसी भी क्रिया का अर्थ नहीं समझ सकते । मानवमात्र में अस्मिता की भावना 'है' अथवा 'हूँ' जैसे शब्दों में समझी जाती है।

यूरोप की भाषाओं में भी यह भावना इन शब्दों से गतार्थ होती रही है । हम यहाँ इंग्लिश को प्रतिनिधि मानते हुए उस आधार पर अपने कथ्य को सम्पुष्ट करेंगे । इस भाषा के विद्वानों ने माना कि 'होना' अर्थ वाली धातुओं के इंग्लिश रूप रूपान्तर इस प्रकार की चार धातुओं के ही विकसित स्वरूप हैं । Shorter Oxford English Dictionary में 'Be' धातु के अन्तर्गत विद्वान् कोशकार ने लिखा है.....- Surviving inblexions of four bases उन्होंने इसके लिए चार Base का नाम लिया है, उनमें से दो ये ही भू तथा अस् धातुएँ हैं। उदाहरण संस्कृत -भू-Old English-beu-beon-be. इंग्लिश के become आदि शब्द इसी ' be' से निर्मित हैं। इसी प्रकार इंग्लिश में अन्य पुरुष वाली क्रियाओं के साथ जो S या es लगाने वाली परम्परा है, वह संस्कृत की 'अस्' से प्राप्त की गई है ।

इसी प्रकार भारत के हजारों वर्षों के इतिहास में पाली, प्राकृत से लेकर आज तक की भाषाओं में इस अर्थ में जो अनेक रूप, रूपान्तरण प्राप्त हुए हैं, वे सभी इसी भू, अस् से विकसित हैं । यहाँ हम हिन्दी को प्रतिनिधि मानकर विचार करते हैं । हिन्दी में 'होता है' जैसे शब्द संस्कृत के 'भवति-होती-होता' इस क्रम से विकसित है । पूर्वी उत्तरप्रदेश की भोजपुरी आदि भाषाओं में इसी अर्थ में 'बारे' जैसे शब्द संस्कृत के 'वर्तते' से विकसित हैं ।

संस्कृत में भी अस् तथा भू धातु के रूपान्तरण कालक्रमानुसार सीमित शब्दों में नियत हो गए प्रतीत होते हैं । इनमें 'भू' धातु के सर्वाधिक रूप सभी कालों में उपलब्ध होते हैं । डॉ. रघुवीर ने भाषा वैज्ञानिक शब्दावली बनाते हुए एक बार कहा था कि अकेली 'भू' धातु से दो लाख शब्दरूप तैयार किये जा सकते हैं । केवल क्रियापद ही नहीं, अपितु विभु, प्रभु, स्वयम्भू जैसे प्रातिपदिक भी इसी से निर्मित माने गए। संस्कृत विद्वानों को आगे चलकर केवल इसकी अकर्मकता से सन्तोष नहीं हुआ, अत: उन्होंने चुरादिगण में प्राप्ति अर्थ में सकर्मक धातु के रूप में भी स्वीकार किया ।

संस्कृत में भी 'अस्' धातु को भू धातु के समान व्यापकता नसीब नहीं हुई । अत: महर्षि पाणिनि ने आर्धधातुक लकारों में अस् के स्थान में 'भू' आदेश का विधान किया। यह केवल कल्पना की जा सकती है कि किसी युग में 'अस्' के भी सभी रूप रहे होंगे । पर यह उतनी सौभाग्यशाली नहीं रही । अत: इसके

रूप घिसने लगे । महर्षि पाणिनि ने इस घिसाव की प्रक्रिया को आदेश के माध्यम से संसूचित किया है ।

हमारी इस पूर्वोक्त कल्पना को इस तथ्य से अवकाश मिलता है कि कहीं कहीं आर्धधातुक प्रत्ययों के परे रहने पर भी 'अस्' के रूप जीवित रहे हैं । जैसे- प्राण अर्थ वाला 'असु' शब्द । अतिप्राचीन काल में उपनिषदों के अनुसार भावना यह रही कि 'प्राण' वह है जो अनेकानेक इन्द्रियों के विलोपित होने पर भी बचा रह जाय । इस प्रकार बचे रहना, नित्य रूप से बने रहना इस प्राण की सबसे बढ़िया पहचान है । विद्वानों ने माना कि 'असु' शब्द के अन्तर्गत अस् धातु के अलावा इससे बढ़िया कोई शब्द नहीं हो सकता ।

अस् तथा भू की घालमेल की प्रक्रिया में कुछ शब्दों के प्रति सविशेष सन्देह हो सकता है । प्रश्न होगा कि समास, व्यास, इतिहास जैसे शब्द किस धातु से निष्पन्न हैं? इसका स्वाभाविक उत्तर होगा-सम् उपसर्गपूर्वक अस् धातु से घञ् प्रत्यय होकर 'समास' शब्द बना है । पर यहाँ पूर्वोक्त व्याकरण-प्रक्रिया में इस प्रश्न का उत्थान होता है कि पाणिनीय अस्तेर्भूः (२.४.५२) से भू आदेश क्यों नहीं होता ।

यहाँ इसके दो समाधान हो सकते हैं । या तो यह मान लिया जावे कि पाणिनि द्वारा 'भू' आदेश विधान के पश्चात् भी यहाँ 'असु' के समान 'अस' धातु का रूप जीवित रह सका है । अथवा यदि पाणिनि के विधान के प्रति सविशेष आग्रह हो तो यह मानना होगा कि ये 'समास' आदि शब्द अदादिगणीय अस् धातु से नहीं, अपितु 'फेंकना' अर्थ वाली दिवादिगणीय अस् से निर्मित है । इस धातु का प्रयोग 'इष्वास' आदि शब्दों में स्पष्ट रूप से देखा गया है, जहाँ उसका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ होता है- बाण फेंके जाते हैं जिसके द्वारा ऐसा धनुष । 'समास' जैसे शब्दों में फेंकना अर्थ उतना मुखर नहीं है । फिर भी पाणिनीय शासन की सुरक्षा में यह अर्थ तो मानना ही होगा । पर भाषा-वैज्ञानिक रीति से यह कहना होगा कि अन्य भाषाओं के समान विरल होते हुए 'अस्' के प्रयोगों के मध्य 'समास' जैसे शब्दों में यह धातु अपना जीवन बनाए रख सकी है । यही स्थिति ''एधामास'' जैसे प्रयोगों की भी है । पर पाणिनीय शासन मानने पर इसे वाचनिक रूप से सिद्ध करना पड़ता है ।

इस प्रकार का प्रश्न 'समस्यते' जैसे शब्दों के प्रति भी उपस्थिति होता है । सामान्यतः इसे कर्मवाच्य में समझ लिया जाता है । ऐसा मानने पर पुनः वहीं प्रश्न उपस्थित होता है कि यहाँ भू आदेश क्यों नहीं होता । इसके निवारण के लिये पुनः दिवादिगणीय अस् से निर्मित मानना होगा । पर द्वितीय श्रितातीत. (२.१.२४) की काशिका व्याख्या में यह कर्मवाच्य में नहीं, अपितु कर्तृवाच्य में निर्मित है । इसे वहाँ उपसर्गादस्यत्यूह्योर्वावचनम् (१.३.३०) इस वार्तिक बल से आत्मनेपद किया गया है ।

इस प्रकार इन शब्दों के प्रति पाणिनीय व्याकरण की रीति कुछ भी हो, पर भाषा वैज्ञानिक दृष्टि यह है कि विश्व की प्रमुखतः भारत-यूरोपीय भाषाओं में अस्मिता को प्रकट करने के लिए अस् भू के प्रयोग हुए हैं । उनमें विविध भाषाओं में कुछ धातुओं के प्रयोग विलुप्त हो गए हैं । कुछ घिस गए हैं तथा कुछ स्थानों में एक के स्थान में दूसरे का प्रयोग प्रचलित हो चुका है । भाषा के विकास की यही तो नियति है ।

शास्त्र

सम्पूर्ण सृष्टि का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि यहाँ सब चीजें एक दूसरे की पूरक हैं, एक दूसरे की सहयोगी हैं। पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश के रूप में पञ्चभूत, नदी-पर्वत, मेघ-मालाएँ, वृक्षादि, पशु इत्यादि सभी में कितना सामञ्जस्य है, सन्तुलन है, सहयोग है, यह सब देखते ही बनता है। मनुष्य को छोड़कर सारा का सारा सर्ग सुसंवादी है, संगीतमय है। उसका कारण है प्रकृति प्रदत्त व्यवस्था से वे सब नियन्त्रित हैं। वे जैसे हैं वैसे ही बने रहते हैं। वहाँ ज्ञान का विकास या ह्रास नहीं है। उनका आहार नियत है, प्रजनन नियत है, सोना-जागना नियत है और कार्य नियत है। मनुष्येतर सभी योनियाँ अन्दर बाहर से एक रूप रहती हैं, वे अपने आन्तरिक भाव और विचार को छिपकर नहीं रख सकते, बल्कि यह कहना अधिक उचित होगा कि विचार तो उनके पास होते ही नहीं, भाव होते हैं, वे आलम्बन के अनुसार उदय और अस्त होते रहते हैं। उनके 'मैं' में केवल जीने की आश मात्र होती है?('मैं' की माँगें कभी हों कभी न हों ऐसा नहीं होता, 'मैं' की जो भी माँगें होती हैं वे सतत होती हैं) अत: उनके मैं की यह माँग भी उनमें सतत बनी रहती है। समय-समय पर उनके शरीर की माँगें भोजन, पानी, नींद, घूमना-फिरना, प्रजनन आदि होती हैं। इतनी मात्र उनकी माँगें यदि पूर्ण होती रहती हैं तो इससे आगे उन्हें कुछ नहीं चाहिए। बस वे तृप्त रहते हैं।

किन्तु मनुष्य की स्थिति अलग है। मनुष्य में मन और बुद्धि का विशेष विकास होने के कारण वह सोचने लगता है, अच्छे बुरे का विचार करता है, विचार-सामर्थ्य के बढ़ जाने के कारण उसके अपने ज्ञान के अनुसार अलग-अलग दिशाओं में इच्छाएँ भी बढ़ जाती हैं। उसका 'मैं' पशुओं के 'मैं' की तरह केवल जीना मात्र नहीं चाहता, बल्कि ज्ञान-समाधानपूर्वक जीना चाहता है, सम्बन्धों में स्वस्थतापूर्वक व सहजतापूर्वक जीना चाहता है। अपनी आन्तरिक माँग व बाह्य जीवन के बीच सन्तुलन चाहता है। जीवन को संगीतमय देखना चाहता है।

जीवन के इस चरमोत्कर्ष तक पहुँचने के लिए, प्रज्ञा की वह निर्मल ज्योति, वह अन्त: प्रकाश जब तक प्राप्त नहीं हो जाता तब तक व्यक्ति को बाह्य प्रकाश में जीना होता है। गुरुवचन, शास्त्रवचन, परम्परा, सब बाह्य प्रकाश के अन्तर्गत आते हैं। यद्यपि महापुरुषों व गुरुजनों के अनुभव और उनके अन्त:प्रकाश का स्थूल वैखरी वाणी में प्राकट्य ही शास्त्र कहा जाता है, तो भी किसी अध्येता या श्रोता के लिए तो वह प्रकाश बाहर का ही है। पातञ्जल महाभाष्य में शास्त्र के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कई एक महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध हैं, जिनकी हमारे जीवन के सौन्दर्य के लिए अपरिमित आवश्यकता है। भाष्यकार कहते हैं- 'निवर्तकं शास्त्रम्' (महाभाष्य 1.1.1.) **शास्त्र व्यर्थ की चीजों को हमारे जीवन से हटा देता है, अनावश्यक का मिश्रण जीवन के सौन्दर्य में बहुत बाधक है।** एक और सूचना है- **'न ह्यव्यवस्थाकारिणा शास्त्रेण भवितव्यम्। शास्त्रतो हि नाम व्यवस्था'** (महाभाष्यम् 6.1.135) अर्थात् **शास्त्र का काम व्यवस्था करना है, न कि अव्यवस्था।** व्यवस्था का ही दूसरा नाम शास्त्र है। शास्त्र हमारे

जीवन को व्यवस्थित कर देता है। कर्तव्य-अकर्तव्य, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य, प्रवृत्ति-निवृत्ति का यथार्थ बोध शास्त्र से ही होता है। एक अन्य स्थल पर कहा है- 'धर्मोपदेशनमिदं शास्त्रम्' (महाभाष्यम् 6.1.84) अर्थात् **शास्त्र धर्म का उपदेश करने वाला होता है।** शास्त्र से ही हमें धर्म का ठीक-ठाक ज्ञान होता है। अभियुक्तों (विशेषज्ञों) ने कहा है-

प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा।
पुंसां येनोपदिश्यते तच्छास्त्रमभिधीयते।।

अर्थात् **जिन नित्य वचनों** (अपौरुषेय वेद वचनों) **से अथवा वेद से अन्य प्रामाणिक वचनों (कृतकेन) से जो मनुष्यों की कर्मों में प्रवृत्ति या निवृत्ति कही जाती है, उन वचनों का नाम ही शास्त्र है।** शास्त्र के दो ही प्रयोजन हैं-मनुष्य को इष्ट में लगाना और अनिष्ट से हटाना। श्रीमद्भगवदगीता में भी कहा है-

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।। (गीता 16.24)

अर्थात् कार्य अकार्य का निर्णय करने के लिए हे अर्जुन! तुझे शास्त्रों को प्रमाण मानना चाहिए। अत: शास्त्रविधान से कही हुई बात को समझकर (शास्त्र द्वारा जो यह आज्ञा दी गई है कि 'यह कार्य कर, यह मत कर' यही शास्त्रविधान है) तदनुसार इस लोक में कर्म करना उचित है। इससे पहले वाले श्लोक में कहा है-

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।। (गीता 16.23)

जो शास्त्रोक्त विधि को छोड़कर मनमाना आचरण करने लगता है, उसे न सिद्धि मिलती है, न सुख, न ही उत्तम गति प्राप्त होती है।

ज्ञान की न्यूनता और इन्द्रियों की बहिर्मुखता के कारण मनुष्य की प्रतीयमान इन्द्रिय सुखों में अत्यन्त आसक्त रहती हैं। अधिक से अधिक सम्पत्ति और सत्ता प्राप्त करने की लालसा लगी रहती है। इस कारण उसके **मन बुद्धि की चञ्चल अवस्था में मनुष्य अपने 'मैं' (शुद्ध मैं) की माँगों का ठीक-ठाक आकलन नहीं कर पाता। अपने अहंकार की माँगो को ही अपने मैं की माँग समझता रहता है।** जैसे बड़ा घर, बड़ी गाड़ी, भौतिक साधनों की विपुलता, बाहर से मिलने वाला सम्मान, प्रतिशोध की भावना, तुच्छ मनोरंजनों से मन को खुश करना इत्यादि तमाम प्रकार की चीजों को अपने आन्तरिक मैं की तृप्ति के साधन के रूप में देखता रहता है। शास्त्र धीरे-धीरे व्यक्ति की स्वेच्छाचारिता को नियन्त्रित करता हुआ उसे अन्तर्मुख बनने में मदद करता है। अन्दर उपस्थित भगवान्, गुरु, सत्य, चैतन्य, आनन्द, प्रेम, करुणा, प्रकाश

से जब व्यक्ति का पूर्ण परिचय हो जाता है तो इन बाहर के शास्त्रों या इन बाहर के गुरुओं का कार्य पूरा हो जाता है, व्यक्ति अन्त:प्रेरणाओं से चलना प्रारम्भ कर देता है। जीवन धन्य हो जाता है। स्वर्ग का धरती पर अवतरण हो जाता है, अमृतत्व की प्राप्ति हो जाती है, प्रसन्नता जीवन का अविभाज्य अंग बन जाती है।

सब विद्याओं के विभाग, सभी विद्याओं का अन्तहीन विस्तार अपरा विद्या के अन्तर्गत आते हैं। यद्यपि अध्यात्म विद्या (मनुष्य समग्र व्यक्तित्व का आन्तरिक बोध) परा विद्या है किन्तु वह भी जब गुरूपदेश या शास्त्र से प्राप्त की जा रही है तो अपराविद्या के क्षेत्र में ही समाहित होती है। वह शुद्धतम अवस्था जो कि तत्त्वों के साक्षात्कार में अविनाभाव सम्बन्ध के रूप में स्वीकृति हुई है, उस प्रतिबोध रूप अवस्था या निदिध्यासन रूप अवस्था का ही पराविद्या के रूप में समावेश किया गया है, सो ज्ञान का विषय क्षेत्र **'मैं' 'वह'** और **'यह'** तीनों ही हैं। इन तीनों का ही अन्तहीन विस्तार उपलब्ध है।

'मैं' का हम स्वयं अपने प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं। **मैं वह है जिसे ठीक शिक्षा, ठीक संस्कार, ठीक परिवेश मिल जाए तो वह अपने आप को समग्रता से जानने में सक्षम हो जाता है;** अन्यथा वह स्वेच्छाचारी, इन्द्रियों का दास, सदा भयभीत, अपने सुखों के लिए दूसरों की परवाह न करने वाला अहंकारी, ज्ञान और भाव दोनों से विहीन, दु:खों की अन्तहीन श्रृंखला मात्र बनकर जीता है। उचित शिक्षा संस्कार व परिवेश मिलने पर यह 'मैं' सदा ज्ञान समाधान में ही जीना चाहता है; सदिच्छा, सद्विचार, सदाशा में जीना चाहता है, सदा दूसरों के साथ सम्बन्ध पूर्वक जीना चाहता है, न्यायपूर्वक अर्थात् मानवीय मूल्यों के साथ जीना चाहता है, गौरव के साथ, कृतज्ञता और श्रद्धापूरित हृदय के साथ जीना चाहता है; स्वयं को और दूसरों को सुखी देखना चाहता है; प्रकृति के साथ सह अस्तित्व पूर्वक, समाज में निर्भयता पूर्वक, परिवार में अपने ज्ञान के प्रकाश में अपनी आवश्यकताओं का निर्धारण कर, न कि दूसरों की देखा-देखी झूठे दिखावे के साथ, समृद्धिपूर्वक जीना चाहता है। **'वह'** के बारे में शास्त्र से या प्रामाणिक गुरुजनों से सुनते हैं और उस सुने हुए को कैसे अपने प्रत्यक्ष अनुभव में लाया जाए इस विषय में मार्गदर्शन पाते हैं। तीसरा रह जाता है **'यह'** इस 'यह' का ज्ञान प्राप्त करने के लिए तो समस्त संसार ही अपने-अपने ढंग से बड़े उत्साह से जुटा हुआ है।

सरलार्थ यह है – इन तीनों का ही शास्त्र अथवा गुरूजनों से उपलब्ध ज्ञान अपरा विद्या के अन्तर्गत आता है 'मैं' और 'वह' का अनुभवात्मक ज्ञान पराविद्या के अन्तर्गत आता है।

—आचार्य प्रद्युम्न
पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार

भारत के जगद्गुरु होने का अर्थ व उपाय क्या हैं?

लेखक – आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

सोलहवीं लोकसभा के चुनाव ने भारत को एक महान् देशभक्त नेतृत्व श्री नरेन्द्र मोदी के रूप में प्रदान किया है, जिन्होंने काशी में भारत को जगद्गुरु बनाने की इच्छा का संकेत करते हुए कहा था, ''जब भारत जगद्गुरू था तब काशी नगर राष्ट्रगुरु था और यदि भारत को पुनः जगद्गुरु बनाना है तो काशी को राष्ट्रगुरु बनाना होगा।'' काशी को राष्ट्रगुरु बनने का संकेत स्पष्ट है कि भारत की प्राचीन वैदिक विरासत व देववाणी संस्कृत भाषा का पुनरोदय होने से ही यह राष्ट्र पुनः जगद्गुरु बन सकता है। इधर श्री मोदी के मन्त्रिमण्डल की एक सदस्या श्रीमति स्मृति ईरानी जिन पर भारत के मानव संसाधन विकास मंत्रालय का बहुत महत्वपूर्ण दायित्व है, ने वैदिक साहित्व पढ़ाने की वकालत की है। यह देश के लिए बहुत ही शुभ संकेत है। यहाँ कुछ कथित प्रबुद्ध जनों को श्री मोदी के कथनों में परस्पर विरोध प्रतीत हो सकता है। उनकी दृष्टि में मोदी जी एक ओर अत्याधुनिक विज्ञान, तकनीक के द्वारा राष्ट्र को अमेरिका, चीन व यूरोपीय देशों की बराबरी पर लाने की बात करते हैं तो दूसरी ओर वे भारत की प्राचीन परम्परा के पुनरोदय की बात करते हैं। क्या यह परस्पर विरोध नहीं है?

अंग्रेजी भाषा के एकछत्र विश्वव्यापी शासन तथा वर्तमान विज्ञान व टैक्नोलॉजी के इस युग में वेदादि की बात करना कहाँ तक युक्ति संगत है, वह भी वेदादि शास्त्र व संस्कृत भाषा के बल पर भारत को विश्व गुरु बनाने का स्वप्न देखना व दिखाना कहाँ उचित है, यह अवश्यमेव विचारणीय है। वर्तमान विश्व में तो दूर की बात है, अपने देश में भी इस प्रकार की बातों पर प्रबुद्ध वर्ग विश्वास नहीं करता। मेरी दृष्टि में इसके दो कारण हैं। प्रथम यह कि **भारत का नागरिक विशेषकर प्रबुद्ध युवा तन से भारतीय तथा मन व आत्मा से पूर्णतः मैकाले का भक्त हो चुका हैं उसे भारतीयता की वह कोई बात अच्छी नहीं लगती जो पूर्व काल की संस्कृति, सभ्यता व शिक्षा की समर्थक हो। दूसरा कारण यह भी है कि भारतीय वैदिक विद्या वा संस्कृत भाषा की वकालत करने वालों ने कोई ऐसा महत्वपूर्ण चमत्कार वर्तमान समय में नहीं किया, जिसे पाश्चात्य विद्या विज्ञान के सम्मुख कुछ भी महत्व मिल सके।** बड़े-बड़े कथित वैदिक विद्वान्, संस्कृत भाषा के पण्डित, दर्शनाचार्य सभी पाश्चात्य विज्ञान व टैक्नोलॉजी के सम्मुख नतशिर होकर उनका सगर्व प्रयोग कर रहे हैं। वेद, दर्शन आदि का नाम लेकर जो संस्थाएं चल रही हैं, जिन विद्वानों की आजीविका चल रही है, उनके बच्चे भी संस्कृत वा वैदिक विद्या को नहीं पढ़ते। पिता, गुरु व नेता संस्कृत भाषा व आर्ष विद्या की बात तो करते हैं परन्तु पुत्र, शिष्य व अनुयायी अंग्रेजी भाषा व पाश्चात्य मैकाले की शैली की शिक्षा न केवल देश अपितु विदेश में जा-जाकर ग्रहण करते हैं, तब वेदादि शास्त्रों व संस्कृत भाषा को कौन पढ़ेगा और कैसे इससे भारत को विश्व के उच्च विकसित विज्ञान का गुरु बनाया जा सकेगा? यह बात गम्भीरता से सोचने का अवसर किसी के पास नहीं है। यदि श्री मोदी आधुनिक विज्ञान व

सार्वदेशिक आर्य वीरांगना दल

के तत्वावधान में

राष्ट्रीय व्यक्तित्व विकास एवं आत्मरक्षण शिविर

दिनांक 18 जून से 28 जून, 2015

स्थानः एस.एम.आर्य पब्लिक स्कूल, पंजाबी बाग वैस्ट, दिल्ली

प्रत्येक वर्ष की भांति इस वर्ष भी कन्याओं में शारीरिक, आत्मिक, नैतिक बल एवं वैदिक सिद्धान्तों, संस्कारों का प्रशिक्षण देकर उन्हें राष्ट्र, समाज व परिवार के निर्माण में अहम् भूमिका निभाने हेतु सार्वदेशिक आर्य वीरांगना दल यह शिविर आयोजित कर रहा है। सभी प्रान्तीय सभाओं, जिला समाजों व गुरुकुलों में जहां वीरांगना दल की शाखायें लगती हैं ये प्रार्थना है कि वे अपनी चुनी हुई वीरांगनाओं को इस शिविर में भेजें।

उद्घाटनः बृहस्पतिवार 18 जून, 2015 सांय 5 बजे समापनः रविवार 28 जून, 2015 प्रातः 10 से 1 बजे

*शिविरार्थी 18 जून को दोपहर 1 बजे तक जरूर पहुँच जायें। *आयु कम से कम 14 वर्ष हो।

*टार्च, लाठी, मग, साबुन साथ लायें। *शिविर का गणवेश 2 जोड़ी सफेद सलवार कमीज, केसरिया दुपट्टा, सफेद पी.टी. शूज, सफेद मोजे व पहनने के उचित कपड़े साथ लाये।

*शिबिरार्थी कोई भी कीमती वस्तु, मोबाइल, व अधिक पैसा साथ न लाएं।

*शिविर शुल्क 500 रुपये प्रति शिविरार्थी होगा। पाठ्य पुस्तकें शिविर की तरफ से दी जायेंगी।

*सभी शिविरार्थी अपना नामांकन 18 जून 2015 दोपहर 1 बजे तक करा लें।

निवेदनः सभी आर्य जनों से निवेदन है कि इस राष्ट्रीय शिविर में सैंकड़ों कन्याएं भाग लेंगी, अतः अपनी श्रद्धा एवं सामर्थ्य अनुसार नकद राशि, आटा, दाल, चावल, देसी घी, मसाले आदि देकर पुण्य का लाभ उठाएं।

साध्वी डॉ. उत्तमायति
प्रधान संचालिका
मो. 08750482498 (दिल्ली) 09672286863 (अजमेर)

मृदुला चौहान
संचालिका
मो. 09810702760

(पृष्ट 12 का शेष)

वेदों में परमात्मा के गुण कर्म स्वभाव के बारे में जो बातें कही हैं वे अपने आप में पूर्णतः तर्क संगत एवं विश्वसनीय हैं। वेदों में कहा है कि परमात्मा निराकार है, सर्व व्यापक है, सर्व शक्तिमान् है, सर्वज्ञ है, सब मनुष्यों व प्राणियों के हृदय में विराजमान है । परमात्मा इस संसार का बनाने वाला है, चलाने वाला है तथा सब मनुष्यों के शुभ-अशुभ कर्मों का न्यायपूर्वक फल देने वाला है । परमात्मा किसी के साथ पक्षपात नहीं करता। उसकी भक्ति करने वाला भी भूल से पाप कर बैठता है, तो उसे भी उसका फल भोगना पड़ता है वह कभी किसी के पाप क्षमा नहीं करता । वेदों का मानना है कि परमात्मा की भक्ति वही कर सकता है, जो परमात्मा के गुण कर्म स्वभाव के बारे में सच्ची जानकारी रखता है । जिसे ईश्वर के स्वरूप का सच्चा ज्ञान नहीं वह ईश्वर की भक्ति कैसे कर सकता है ? परम्पराओं के पीछे आँखें बन्द करके ईश्वर की भक्ति व प्राप्ति सम्भव नहीं । हमें बुद्धि व विवेक से काम लेना होगा, परमात्मा का सच्चा ज्ञान प्राप्त करना होगा, उसकी सच्चे अर्थों में भक्ति करनी होगी और इन सब के लिए वेदों का अध्ययन करना होगा ।

टैक्नोलॉजी का बहु आयामी विकास करके स्पर्धा में चीन, अमेरिका, फ्रांस, जापान व जर्मनी जैसे विकसित देशों से आगे जाकर भारत को जगद्गुरु बनाने की बात करते हैं, तब भी जगद्गुरु का स्वप्न पूर्ण नहीं होगा। **भले ही हम स्वच्छ प्रशासन, प्रबल पुरुषार्थ व भ्रष्टाचार मुक्त समाज बनाकर विश्व में सर्वोत्कृष्ट कम्प्यूटर, अन्तरमहाद्वीपीय मिसाइलें, परमाणु बम, हाइड्रोजन बम, न्यूट्रॉन बम जैसे घातक अस्त्र बना लें। ऐलोपैथी चिकित्सा, अन्तरिक्ष विज्ञान, कृषि विज्ञान आदि में हम क्रान्तिकारी विकास करके भारत की शिक्षा पद्धति को उच्चतम शिखर पर पहुँचा कर ऐसे विश्वविद्यालयों, आई.आई. टी., आई.आई.एम, व ऐम्स जैसे शिक्षण संस्थानों को विश्व में सर्वोत्कृष्ट स्थान दिलाने में कभी सफल हो जायें। हमारा 'इसरो' अमरीकी अंतरिक्ष एजेंसी 'नासा' को पीछे छोड़ दे और भले ही हम विश्व की सबसे बड़ी प्रयोगशाला 'सर्न' से बड़ी प्रयोगशाला बना कर संसार के सभी देशों के मार्ग दर्शक व नेता बन जायें परन्तु नैतिकता की दृष्टि से भारत को जगद्गुरु बनने हेतु यह पर्याप्त योग्यता व सामर्थ्य नहीं होगी।** आज भारत को आर्थिक महाशक्ति व आध्यात्मिक महाशक्ति भी बनाने की चर्चा कुछ उत्साही महानुभाव विभिन्न चैनलों से करते रहते हैं परन्तु मुझे लगता है कि जगद्गुरु, महाशक्ति, आध्यात्मिक व वैदिक सम्पदा इन चार शब्दों का यथार्थ भाव अभी तक समझा नहीं गया है। सस्ते सुन्दर स्वप्न देखने व दिखाने से भारत जगद्गुरु नहीं बन पायेगा। हाँ, मैं मोदी जी सहित ऐसे सभी देशभक्तों की इच्छा व प्रयास की सराहना अवश्य करता हूँ कि देश में ऐसा एक प्रधानमंत्री तो बना जो देश के उत्कर्ष की, उसे जगद्गुरु बनाने की बात तो करता है। प्रबल इच्छा तो करता है। जब देश के नेतृत्व की प्रबल इच्छा हो और ईमानदारी से अफसरशाही उस पर अमल भी करे, देश की जनता पूर्ण सहयोग करे तो भारत का जगद्गुरु बनना असम्भव तो नहीं है।

अब मैं उपर्युक्त उस बिन्दू पर आता हूँ कि देश को महान् वैज्ञानिक व आर्थिक शक्ति बनाने पर भी जगद्गुरु का पद हमारे देश को क्यों नहीं मिल सकता ? इस विषय में मेरा मत है कि हम इन क्षेत्रों में जो भी उन्नति करेंगे, जो भी पढेंगे वा पढ़ायेंगे, उन सब पर पश्चिमी वैज्ञानिकों व अर्थशास्त्रियों की ही छाया होगी। उन्हीं का ही पढ़ेंगे फिर भले ही हम उनसे आगे क्यों न बढ़ जायें। आज हमारी पीढ़ी जो भी पढ़ रही है, उसमें आयुर्वेद, हिन्दी, संस्कृत भाषा के अतिरिक्त कोई भी ऐसा विषय नहीं है, जिसका मूल प्राचीन भारतीय विद्या से सम्बन्धित हो, जिनकी पाठ्य पुस्तकों में प्राचीन भारतीय विद्वानों, ऋषियों का नाम भी विद्यमान हों। हाँ, राजनीति शास्त्र व समाजशास्त्र आदि की कुछ पुस्तकों में भगवान् मनु आदि का नाम मिल सकता है। वर्तमान विद्वानों में महर्षि दयानन्द, महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानन्द आदि का नाम मिल सकता है। विज्ञान की पुस्तकों में सी.वी.रमन, सत्येन्द्र बोस, मेघनाथ साहा, होमी भाभा, जगदीशचन्द्र बसु आदि भारतीय वैज्ञानिक तथा विदेश में रहने वाले भारतीयों में से चन्द्रशेखर सुब्रह्मण्यम, हरगोविन्द खुराना आरिद कुछ वैज्ञानिकों के नाम व उनके सिद्धान्त हम पढ़ सकते हैं।..... **शेष अगले अंक में....**

आयुर्वेद चिकित्सा

(1) बवासीर की औषधि:- प्रतिदिन एक निम्बोली (नीम का फल) साबिती की साबिकती निगल जाया करे। दूसरे दिन दो। तीसरे दिन तीन इसी प्रकार बीश दिन तक चढ़ाकर बीशवें दिन बीश निगले फिर एक-एक उतारने लगे तो बीश ही दिन में उतार दे। आराम हो जायगा।

(2) औषधि:- एक तोले भर संखिये की डली लेना और चालीश रुपये भर सिन्दूर लेना। एक हांडी ऊपर से मुख तोड़कर तगरा कर लेना, आधा सिन्दूर तगरे में नीचे रखकर खूब दाब देना, उस पर संखिये की डली रखकर टुक दबा देना कि उसमें बैठ जाय। और शेष आधा सिन्दूर ऊपर डालकर दबा देना। पश्चात् नीचे मंद आँच लगानी। दो तोले सिन्दूर उसमें से रख लेना। जब कहीं सिन्दूर में दराज पड़े तो वह सिन्दूर डालकर दाब देना, जब सिन्दूर जलकर भस्म हो जाय तब नीचे से आगी निकाल लेना। ठंडा होने पर संखिया निकाल लेना। संखिये पर सिन्दूर का सीसा जला भया चिपटा निकले उसको चाकू से पृथक् उतार ले और संखिया पृथक् रख ले। इस संखिये को जलाने की विधि तो मैंने उनसे (स्वामीजी से) उसी समय लिख ली, परन्तु किस रोग पर चलता है, सो बतलाया तो था परन्तु किस रोग पर चलता है, सो बतलाया तो था परन्तु मैं भूल गया। यह संखिया तथा सिन्दूर दोनों काम में आते हैं। सो किसी वैद्य से पूछ कर काम लाना चाहिये परन्तु वैद्य कोई अच्छा विद्वान् हो मूर्ख न हो।

(3) औषधि अभ्रक :- काली अभ्रक को लेकर पत्ते कतर कर टुकड़े कर लेना। बथुवा के रस में खरल में भिगो देना, तीन दिन तक भीगने दे। चौथे दिन कूटकर खरल करे। जब बारीक हो जाय तब तोले-तोले वा डेढ़-डेढ़ तोले भर की टिकिया बनावे। उनको सुखाकर एक-एक टिकिया को मिट्टी के दो-दो सरावों में बंध करके आरणे छानों में जलावे। ठण्डा होने पर निकालकर खरल में घोटकर बारीक करके उक्त रस में टिकिया बाँधकर फिर जलावे इसी प्रकार सात बात जलावे तो भस्म होगी अधिक जलावे तो अच्दा है। तुलसी के रस में देने से ज्वर जाय, आद्रक में देने से खांसी जाय इत्यादि अनुपान में देना। यह औषधि स्वामी जी की परीक्षित है।

(4) औषधि दांत की :- मुलहठी, पपड़िया कत्था, माजूफल, रूमीमस्तगी, नीलाथोथा ये पांचों चीज बराबर लेना। नीलेथोथे को अंगारे पर फुलाकर जल में बुझाकर बाहर निकाल लेना। आगे सारी कॉपी खाली पड़ी है। यह नकल हमने 2/1/1968 को की।

उपर्युक्त लेख से सुस्पष्ट है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज को औषधि-सम्बन्धी गहरी रुचि व जानकारी थी। इसीजिए उनके भाष्य और ग्रन्थों में आयुर्वेद पदे-पदे झलकता है। उपर्युक्त अनुभूत योगों के संग्रहण के लिए परोपकारिणी सभा का आगार प्रकट करते हुए आश करते हैं कि महर्षि के और भी अनुभूत योग शीघ्र प्रकाश में लाकर जनता को लाभान्वित करेगी।

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन में
महाशय धर्मपाल जी (M.D.H.) वाले

दि. 16 मई शनिवार को अचानक सूचना मिली कि महाशय धर्मपाल जी जोधपुर में आ रहे हैं और वे महर्षि दयानन्द सरस्वती भवन का अवलोकन करना चाहते हैं। सूचना मिलते ही न्यास के पदाधिकारियों व समस्त सदस्यों को न्यास पधारने का निवेदन किया और प्राय: सभी अपने परिवार सहित आये। बाजे-गाजे के साथ महाशय जी का पुष्पहार व पुष्प वृष्टि से स्वागत किया। उन्हें सत्संग भवन में लेकर आये और एक सम्मान सभा के रूप में एकत्रित होकर न्यास से जुड़े सभी आर्यों ने महाशय जी का माल्यार्पण कर भावभीना स्वागत किया। सभा में सभी ने महाशय जी की दानशीलता की भूरि-भूरि प्रशंसा की। न्यास परिसर में चल रहे विविध निर्माण कार्यों को देखकर महाशय जी बहुत प्रसन्न हुए। न्यास के प्रधान श्री विजयसिंह जी भाटी व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती चन्द्रकान्ता जी, मंत्री किशन लाल जी आर्य (गहलोत) व्यवस्थापक दुर्गादास जी, पूर्व मंत्री श्री बृजेशकुमार जी, श्री रामेश्वर जसमतिया जी, आदि सभी गणमान्य आर्य जनों ने महाशय जी का स्वागत किया। अपने उद्‌बोधन में महाशय धर्मपाल जी ने न्यास के निर्माण कार्यों को देखकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए न्यास पदाधिकारियों का उत्साह वर्धन किया। न्यास में निर्माणाधीन यज्ञ शाला के लिए उन्होंने कहा कि आप इसका बजट बनाकर दिल्ली पधारो, मैं इसे अपनी समिति के सामने रखकर राशि स्वीकृत कराऊँगा । महाशय जी ने अपनी उदार दानशीलता और निर्धन असहाय जनों के प्रति दया-करुणा से प्रेरित होकर कहा कि आप जोधपुर के निर्धन, असहाय बच्चों को पढ़ाने का काम हाथ में लो उनके अध्यापन (पढ़ाने) का ख़र्चा मैं दूँगा! सब आर्यों ने इसके लिए काम करने का संकल्प व्यक्त किया। न्यास की ओर से महाशय जी के साथ आये सज्जनों के लिए जलपान का प्रबन्ध किया! लगभग डेढ़-दो घण्टे न्यास में रहकर महाशय जी दिल्ली लौट गये।

मंत्री

आर्य किशनलाल गहलोत

न्यास द्वारा मई माह का प्रचार कार्य

2 मई भारतसिंह जी सूरसागर के घर यज्ञ

3 मई आर्यसमाज रातानाड़ा में प्रवचन

10 मई आर्यसमाज गुलाबसागर में गौरक्षा, व ईश्वर की कर्मफल व्यवस्था पर प्रवचन । एक परिवार में यज्ञ-सत्संग ।

16 मई पीपाड़ शहर में चम्पालालजी के अनुज के घर मुण्डन संस्कार किया । तदनन्तर एक दूसरे परिवार में यज्ञ पारिवारिक सत्संग किया ।

19 मई जिस कक्ष में महर्षि दयानन्द ठहरे थे, उसी कक्ष में यज्ञ पूर्वक आचार्य ओ३म्प्रकाश जी (गुरुकुल आबू पर्वत) का 39 वाँ जन्म दिन मनाया ।

21 मई पीपाड़ शहर में चम्पालालजी के घर यज्ञ व पारिवारिक सत्संग किया ।

22 मई रामेश्वर जसमतिया के परिवार में यज्ञ व प्रवचन ।

24 मई न्यास में नवनिर्मित उद्यान में वृक्षरोपण के पूर्व यज्ञ व संक्षिप्त प्रवचन ।

25 मई से 29 मई तक उज्जैन (मौलाना विक्रमनगर) में चतुर्वेदशतक पारायण यज्ञ कराया व वेद, सत्संग, प्रवचन

30-31 मई को गुरुकुल आबू पर्वत के वार्षिक उत्सव पर प्रवचन व मंच संचालन किया ।

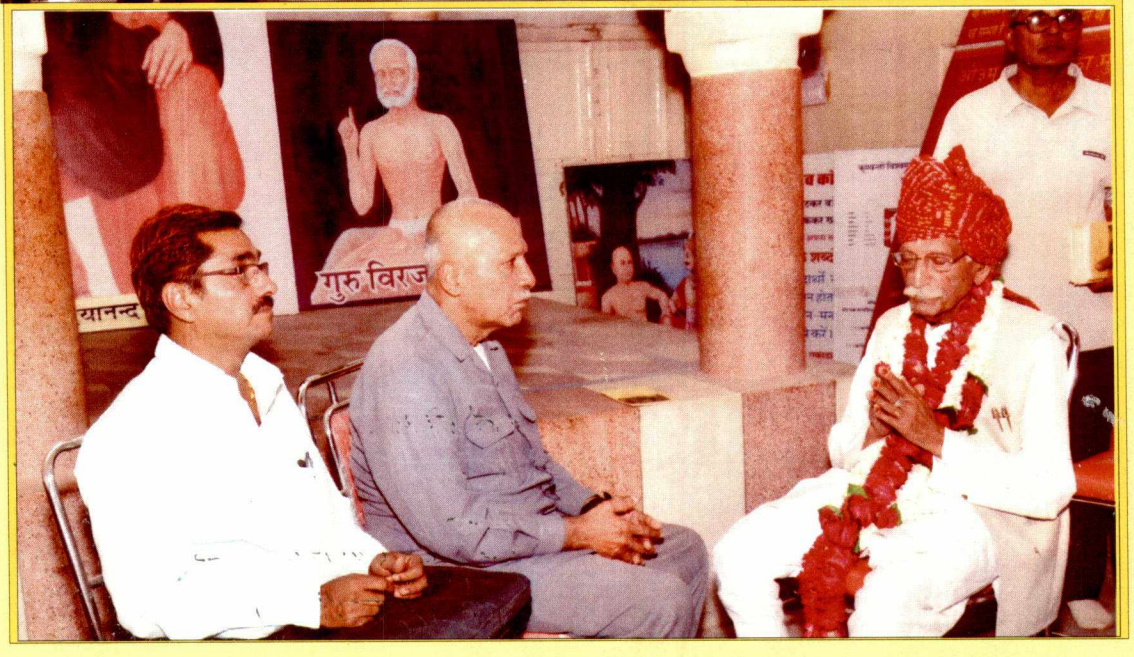
गुरु विराज

Postal Reg. Jodhpur/434/2015-17 Date Of Posting 9-6-2015

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास
निरन्तर प्रगति के पथ पर

सत्वाधिकारी महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास के लिए प्रकाशक व मुद्रक विजयसिंह भाटी द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, महर्षि दयानन्द मार्ग, मोहनपुरा पुलिया के पास जोधपुर (राज.) से प्रकाशित एवं सैनिक प्रिण्टर्स, मकराणा मौहल्ला केरू हाऊस जोधपुर से मुद्रित । सम्पादक-रामनिवास फोन नं. 0291-2516655
07597894991

Book-Post

विनय आर्य
दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा
15-हनुमान रोड
नई दिल्ली-1